प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

रांगडी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

चतुर्थ संस्करण

अक्टूबर १९६७

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट -

मुद्रक :

जैन आर्ट प्रेस

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर

प्रकाशकीय

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के व्याख्यानो मे से सम्पादित 'रुक्मिणी विवाह' नाम की यह पुस्तक पाठको के कर कमलो मे पहुँचाते हुए हम बहुत आनन्द का अनुभव कर रहे है। इसके तीन सस्करण पूर्व प्रकाशित हो चुके है। जवाहर साहित्य की माग जनता मे बढती जा रही है; इसी से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा सचालित 'श्री गणेश स्मृति ग्रंथमाला' के अतर्गत ग्रथाक १० के रूप मे 'रुक्मिणी विवाह' का यह चतुर्थ सस्करण प्रकाशित कर रहे है। यह पुस्तक सासारिक जीवन को सुगम और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाने मे किस प्रकार सहायक हुई है व होगी, यह बताना हमारे अधिकार से परे की बात है, इसे सुज्ञ पाठकगण ही बता सकते है।

पूज्य आचार्य श्री जी के व्याख्यान साधु-भाषा मे और शास्त्र-सम्मत होते थे, लेकिन सग्राहक, संपादक एव सशोधक से त्रुटि होना सभव है। यद्यपि हमारी दृष्टि मे आया उतना संशोधन किया है। फिर भी कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठको से प्रार्थना — कि यदि उन्हे कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमे सूचित करें। हम उनके आभारी होगे। किमधिकम् !

संघसेवक

जुगराज सेठिया, मंत्री

सुन्दरलाल तातेड़, सहमंत्री — उत्तमचंद सूथा, सहमंत्री

पीरदान पारख, ,, — उगमराज, मूथा ,,

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

श्री गणेश स्मृति ग्रंथमाला के सहायक

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कलकत्ता		५०००.००
(स्व. आचार्य श्री गणेशलाल जी म० सा० के जीवन चरित्र हेतु)		
श्रीमती सूरजबाई जी धाड़ीवाल		६०२.००
श्रीमती भूरीबाई जी सुराना	रायपुर	५००.००
श्रीमती उमरावबाई जी मूथा	मद्रास	५००.००
श्रीमती सायरकुंवरबाई जी मूथा	मद्रास	२०१.००
श्रीमती मदनबाई जी बाफणा		२०१.००

प्राक्कथन

सदाचार की दृष्टि से मनुष्य दो भागो मे विभक्त हैं। एक पूर्ण ब्रह्मचारी और दूसरे अपूर्ण यानी देश ब्रह्मचारी। पूर्ण ब्रह्मचारी तो वे हैं जो कभी और किसी भी दशा मे वीर्य नष्ट नही होने देते और अपूर्ण ब्रह्मचारी वे हैं जो वीर्य की पूर्णतया रक्षा तो नही कर पाते, लेकिन उसका दुरुपयोग भी नही होने देते। अर्थात् विवाह करके मर्यादापूर्वक गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते हैं। जो लोग पूर्ण ब्रह्मचारी भी नही है और मर्यादित जीवन भी व्यतीत नहीं करते हैं, किन्तु दुराचारी हैं वे साधारण मानवी कर्तव्यों से भी पतित हैं। जो लोग विवाह करके मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, उनकी गणना पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर भी पापात्मा में नही, किन्तु धर्मात्मा मे ही हो सकती है। लेकिन जो किसी मर्यादा का पालन नही करते, उनकी गणना पापात्मा में ही होगी।

विवाह करके मर्यादित जीवन बिताने वाले स्त्री-पुरुष अपनी रुचि और समानता को दृष्टि में रखकर स्वतन्त्रतापूर्वक विवाह की ग्रंथि मे बधते हैं। इसमें जबरदस्ती को किंचित् भी स्थान नही है। लेकिन स्त्रियो की नम्रता, सरलता और लज्जा से अनुचित लाभ उठाकर अनेक पुरुष उनके जन्मसिद्ध अधिकारों की हत्या कर डालते हैं। ऐसे लोग कन्या या स्त्री की रुचि नही देखते, अपितु अपनी रुचि या स्वार्थ देखते हैं। वे कन्या के न चाहने पर भी उसके पति बनना चाहते हैं। अनेक कन्या के माता-पिता या भाई भी कन्या की रुचि को नही देखते, किन्तु अपना सुख, अपनी सुविधा और अपने लोभ की पूर्ति के लिए कन्या का विवाह ऐसे पुरुष के साथ

कर देते हैं, जिसे कन्या अपने योग्य या अपनी रुचि के अनुकूल नही समझती। अनेक कन्याएँ तो माता-पिता आदि के कारण अपना जीवन अनिच्छापूर्वक ऐसे पुरुप को सौंप देती है, जिसे वह अपने लिए अयोग्य समझती है और इसका कारण है उनकी लज्जाशीलता या तद्विपयक अज्ञता। प्रस्तुत कथा मे रुक्मिणी के लिए भी ऐसा ही अवसर आया था। उसकी माता और उसके भाई ने उसका विवाह शिशुपाल के साथ करना तय किया था और शिशुपाल भी रुक्मिणी को अपनी पत्नी वनाने के लिए तैयार हो गया था, लेकिन रुक्मिणी शिशुपाल को अपना पति नही बनाना चाहती थी। वह अपने कन्योचित अधिकारो का उपयोग करके अपना जीवन एक अनचाहे पुरुष को नही सौंपना चाहती थी। इसके लिए उसने क्या-क्या किया, उसने अपने अधिकारो की किस प्रकार रक्षा की और रुक्मिणी पर अत्याचार करने वालो को किस प्रकार पश्चात्ताप करना पडा, यह इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञात होगा। साथ ही इस पुस्तक से यह भी मालूम होगा कि कन्याएँ अपना जीवन किस प्रकार सुखी बना सकती है, उनका क्या कर्तव्य है और पुरुपों को लज्जाशील, विनम्र एवं अवला मानी जाने वाली कन्याओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। इत्यलम्।

—सम्पादक

अनुक्रम

स्वर्गीय आचार्यवर के उद्गार

पुरुषो !

कन्याओं पर अत्याचार मत करो। उनके अधिकारों का अपहरण करना त्यागो। उनको अपनी तरह मानो, केवल अपने भोग की सामग्री मत समझो। वे भावी माता हैं। उनका अपमान स्वयं का अपमान है और उनका सम्मान स्वयं का सम्मान है। वर्तमान स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन तुम्हारे अन्याय का ही परिणाम है, अन्यथा स्त्रियां अपने को पुरुषों से भिन्न मानने की इच्छा कदापि नही कर सकती। विधवा-विवाह का प्रश्न भी तुम्हारी बढती हुई लालसा से ही उत्पंन्न हुआ है। इसलिये लालसाओं को रोक कर संयम से काम लो। ऐसा करने में ही कल्याण है।

१ : कथारम्भ

विन्ध्याचल की दक्षिण ओर स्थित विदर्भ देश—जो अब बरार कहलाता है—मे कुंडिनपुर नाम का एक नगर था। वहाँ भीम नाम के एक क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम शिखावती था। राजा भीम के पाँच पुत्र थे, जिनमें से बड़े का नाम रुक्म था। रुक्म स्वभाव से क्रोधी और उद्दंड था। पुत्र के सिवा, भीम के एक पुत्री भी थी, जिसका नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी बहुत सुन्दरी थी। तत्कालीन कन्याओं मे रुक्मिणी सबसे बढ़कर सुन्दरी और गुणसम्पन्ना मानी जाती थी।

रुक्मिणी विवाह योग्य हुई। राजा भीम रुक्मिणी के विवाह के विषय मे विचार करने लगे कि रुक्मिणी का विवाह किसके साथ किया जावे। विवाहादि कार्यों में स्वेच्छाचार से काम न लेकर, गृह के अन्य लोगों, मन्त्रियो, हितैषियों तथा सम्बन्धियों से सम्मति और कन्या से स्वीकृति लेना उचित है, यह विचार कर एक दिन राजा भीम ने रानी, पुत्र, मन्त्री आदि को अपने समीप बुलाया। जब सब लोग महाराज भीम के सन्मुख उपस्थित हो गये, तब भीम ने कहा कि राजकुमारी रुक्मिणी अब विवाह के योग्य हुई है, अतः उसका विवाह

कहाँ और किसके साथ किया जावे, इस विषय पर आप सब अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करे। भीम की बात के उत्तर मे मन्त्री ने निवेदन किया कि इस विषय में आप ऐसे अनुभवी और दूरदर्शी को हम क्या सम्मति दे सकते है। रुक्मिणी के विवाह के विषय मे आपने कोई विचार कर ही रखा होगा, अत. आप अपना विचार हम लोगो को सुना दीजिये, जिससे आपके विचार के विषय मे हम लोग अपनी सम्मति दे सके।

भीम—हाँ, मैने विचार तो अवश्य कर रखा है, परन्तु मेरा विचार आप लोगों को पसन्द होगा या नही, यह मैं नहीं कह सकता।

मन्त्री—लेकिन इस भय से अपने विचार को अप्रकट रखना भी तो ठीक नही! पहले तो आपका विचार बहुत करके हम लोगों को पसन्द ही होगा। कदाचित् पसन्द न भी हुआ, तब भी उस विचार पर से आगे विचार करने का मार्ग तो खुल जायेगा!

भीम—ठीक है, सुनो। मै अपना विचार सुनाता हूँ। मेरी समझ से कन्या ऐसे पुरुष को समर्पण करनी चाहिए, जो कन्या के अनुरूप हो। कन्या के अनुरूप पुरुष देखने में जाति, कुल, रूप, गुण, आयु, शरीर, बल और वैभव का ध्यान रखना आवश्यक है। नीति मे भी कहा है—

कुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
एतानि सप्तानि विलोकितानि एतत्परं नास्ति विलोकनीयम्॥

रुक्मिणी गुण, रूप आदि में जैसी उत्कृष्ट है वैसी उत्कृष्ट दूसरी कन्या शायद ही हो। उसके लिए वर भी उत्कृष्ट ही होना चाहिए। मैंने इस विषय में अपनी दृष्टि दौड़ाई तो मुझे रुक्मिणी के लिए द्वारका के राजा कृष्ण के सिवा दूसरा योग्य वर दिखाई नही देता। श्रीकृष्ण प्रत्येक दृष्टि से रुक्मिणी के योग्य है। जाति, कुल मे कृष्ण उत्तम ही हैं। वे यदुवशी हैं और यदुवंश की श्रेष्ठता को कोई अस्वीकार नही करता। गुण और रूप मे भी आज कृष्ण की समता करनेवाला कोई नही है। आयु में भी कृष्ण अभी युवक हैं। शरीर से भी स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट है। कृष्ण के बल के विषय मे तो कहना ही क्या है! उन्होने बचपन मे ही अनेको राक्षस मार डाले थे, गोवर्द्धन पर्वत को अगुलो पर उठा लिया था और कस ऐसे पराक्रमी राजा को भी देखते-ही-देखते मार डाला था। आज भी जरासन्ध के सामने नतमस्तक होने से यदि कोई राजा बचा है तो वे श्रीकृष्ण ही हैं। मेरे विचार से यदि रुक्मिणी स्वीकार करे तो उसका विवाह श्रीकृष्ण के साथ करना ही ठीक है।

राजा भीम की बात वहाँ उपस्थित और सब लोगों को तो प्रिय लगी परन्तु रुक्म को अप्रिय मालूम हुई। भीम के मुँह से श्रीकृष्ण का नाम निकलते ही रुक्म के शरीर मे आग-सी लग गई। उसे कृष्ण की प्रशंसा असह्य हो उठी। क्रोध के मारे उसकी भौहें तिरछी और मुँह लाल हो गया। वह विचारने लगा कि पिताजी कब अपनी बात समाप्त करे

और मैं कृष्ण की प्रशंसा का खण्डन करके उसके साथ रुक्मिणी का विवाह किये जाने के प्रस्ताव का विरोध करूँ !

रुक्म चन्देरी के राजा शिशुपाल का मित्र था। शिशुपाल कृष्ण को अपना वैरी मानता था और सदा उनकी निन्दा किया करता था। शिशुपाल का मित्र होने के कारण रुक्म भी कृष्ण को अपना वैरी समझने लगा था। उसने शिशुपाल और उसके साथियों द्वारा कृष्ण की निन्दा-ही-निन्दा सुन रखी थी, इसलिए वह भी कृष्ण को निन्द्य ही मानता था। वैसे तो शिशुपाल कृष्ण की फूई का लड़का होने के नाते कृष्ण का भाई होता था लेकिन अनेक कारणों से वह कृष्ण को शत्रु समझता था। पहला कारण तो शिशुपाल का झूठा अभिमान था। शिशुपाल यह समझता था कि हम नरेश है, राजा है, हमारे लिए उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय और धर्म-पाप की कोई मर्यादा नही है। हमारा जन्म ही अच्छे-अच्छे रत्नों का भोगोपभोग करने को हुआ है और इसके लिए हम जो कुछ भी करे, वही उचित न्याय और धर्म है। कृष्ण शिशुपाल के इन विचारों मे बाधा-रूप थे। दूसरा कारण कृष्ण से वैर मानने का, मगध नरेश जरासन्ध से उसकी मैत्री थी। शिशुपाल जरासन्ध का अभिन्न मित्र था और जरासन्ध कृष्ण से शत्रुता मानता था। कृष्ण ने जरासन्ध के दामाद कंस को मारकर जरासन्ध की पुत्री को विधवा बना दिया था। इसी कारण जरासन्ध के लिए, कृष्ण शत्रु-रूप थे। इनके सिवा एक कारण और भी था, जिससे कि शिशुपाल कृष्ण को अपना शत्रु सम-

झता था। जब शिशुपाल का जन्म हुआ था तब किसी ने यह भविष्यवाणी की थी कि इस बालक की मृत्यु इसी के मामा के पुत्र कृष्ण के हाथ से होगी। शिशुपाल की माता यह भविष्यवाणी सुनकर बड़ी दु:खित हुई। वह शिशुपाल को लेकर अपने भाई वसुदेव के यहाँ आई। उसने, शिशुपाल को कृष्ण की गोद में डाल दिया और भविष्यवाणी सुनाकर कृष्ण से प्रार्थना की कि आप अपने इस भाई को अभय कीजिये। कृष्ण ने अपनी फूई को धैर्य बधाकर कहा कि मै अपने इस भाई के एक दो ही नही, किन्तु ९९ अपराध होने पर भी इसे क्षमा करूँगा, मारूँगा नही। आप विश्वास रखे। शिशुपाल की माता कृष्ण से यह वचन पाकर सन्तुष्ट हुई। जब शिशुपाल बड़ा हुआ और उसे यह सब वृतान्त मालूम हुआ तब वह श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मानने लगा। शायद कृष्ण के हाथ से अपनी मृत्यु जानकर रक्षा के लिए ही शिशुपाल ने जरासन्ध से मैत्री भी की हो।

राजा भीम अपने विचार प्रकट करके चुप हो गये। वे वहाँ उपस्थित लोगों की सम्मति की प्रतीक्षा करने लगे। इतने ही में रुक्म टेढ़ी भौहे करके कहने लगा—वाह पिताजी आपने रुक्मिणी के लिए अच्छा वर विचारा ! जान पड़ता है कि वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि में विकार आ गया है, इसीसे आप रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ करने का कह रहे है। आपने उसकी प्रशंसा करके उसको उत्कृष्ट ठहराया है, परन्तु मैं तो उसे रुक्मिणी के लिए सर्वथा अयोग्य समझता

हूँ। रुक्मिणी का उसके साथ विवाह करना तो दूर रहा, मैं उसे अपने समीप बैठाने मे भी संकोच करूँगा।

अपनी बात का अपने पुत्र द्वारा ही तीव्र विरोध सुनकर वृद्ध राजा भीम को बडा खेद हुआ। वे अपने मन मे कहने लगे कि वास्तव मे यदि मेरी कोई गलती भी थी तो भी मेरा पुत्र होने के कारण इसका कर्तव्य था कि यह नम्रता-पूर्वक मेरी गलती मुझे सुझाता। ऐसा न करके इसने अपमानपूर्ण शब्दों मे मेरी बात का विरोध किया। इसने तो अपनी मूर्खता का परिचय दिया परन्तु मुझे इस मूर्ख के साथ मूर्ख बनना ठीक नही। कम-से-कम इससे जान तो लेना चाहिए कि यह कृष्ण के विषय मे ऐसा बुरा विचार क्यों रखता है।

इस प्रकार विचार कर राजा भीम ने रुक्म से पूछा—कृष्ण में ऐसा कौन-सा भयङ्कर दूषण है, जिसके कारण वे समीप बैठने के योग्य भी नही है ?

रुक्म—क्या आप नही जानते कि वह ग्वाल है ? उसका जन्म ग्वाल के यहाँ हुआ है, वह अहीरों के यहाँ ही उनका जूठा खाकर पला भी है और ग्वालिनियों के साथ नाचता भी रहा है ! वह ग्वाला आज राजा हो गया, तब भी हम क्षत्रियों के समकक्ष कैसे बैठ सकता है ?

रुक्म की बात सुनकर भीम समझ गये कि इसने कृष्ण के विरोधी लोगों की ही बाते सुन रखी हैं और उन्ही बातों पर यह विश्वास कर बैठा है। इसे समझाने से पहले इसके कृष्ण-विरोधी समस्त विचार जान लेना उचित है, जिससे

इनको समझाने में सुविधा हो। उन्होंने रुक्म से कहा—इस कारण के सिवा और किन कारणो से कृष्ण रुक्मिणी के अयोग्य है ?

रुक्म—पहला कारण तो यही है कि वह हीनजाति का है। उस नीच जाति के कृष्ण को अपना बहनोई बना कर उसके आगे अपना मस्तक कैसे झुका सकते है ? और उसके साथ खान-पानादि व्यवहार कैसे कर सकते है ? ऐसा करने पर क्षत्रियों की दृष्टि में हम प्रतिष्ठित कैसे रह सकते है ? दूसरे वह रंग-रूप में भी रुक्मिणी के योग्य नही है। कहाँ तो दामिनि को लज्जित करनेवाली बहन रुक्मिणी, और कहाँ घटा को भी लज्जित करने वाला काला कृष्ण ! तीसरे बल-वैभव मे भी वह हमारी समानता का नही है। जरासन्ध के भय से उसका पलायन ही उसके बल का पता देता है। आज तक वह किसी भी युद्ध में लड़कर विजयी नही हुआ; हाँ, छल-कपट करके भले ही किसी को हरा दिया हो। चौथे, वह गुणहीन भी है। उसमें नाचने-गाने और चोरी का गुण भले हो, उस ग्वाले मे क्षत्रियोचित गुण तो हो ही कैसे सकते हैं ! अब आप ही बताइये कि वह रुक्मिणी के योग्य वर कैसे हो सकता है ?

भीम ने विचारा कि यह मूर्खतावश कृष्ण-विरोधी लोगों की बातो से बहुत अधिक प्रभावित हो चुका है। इस मूर्ख और अविनीत पुत्र को समझना, बहुत कठिन है। नीति मे भी कहा है—

प्रसह्य मणि मुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात्
समुद्रमपि संतरेत्प्रचल दूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्त माराधयेत ॥

अर्थात्—यदि मनुष्य चाहे तो मगर की दाढों से मणि निकालने का उद्योग भले करे, उथल-पुथल होते हुए समुद्र को तैरकर पार होने की चेष्टा भले करे, क्रोध से भरे हुए सांप को पुष्पहार की तरह सिर पर धारण करने का साहस भले करे, परन्तु हठ पर चढे हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को असत्-मार्ग से सत्-मार्ग पर लाने की हिम्मत कदापि न करे।

इसके अनुसार इसे समझाने की चेष्टा निरर्थक ही होगी, फिर भी असफलता के भय से प्रयत्नहीन बन बैठना अनुचित है। ऐसा करना तो नीचो काम है। उत्तम पुरुष का कर्तव्य कार्य करते जाना है, फिर फल हो या न हो। कार्य करना अपने अधिकार की बात है, फल अपने अधिकार मे नही है।

भीम बोले—बेटा रुक्म, तुम्हे किसी ने कृष्ण की ऐसी ही बाते सुनाई है, जिसमे कृष्ण की निन्दा-ही-निन्दा है। कृष्ण की उन बातों से तुम सर्वथा अपरिचित जान पड़ते हो, जिनके कारण कृष्ण की प्रशसा हो रही है। ससार के प्रत्येक मनुष्य में सद्गुण और दुर्गुण दोनो ही रहते है। ऐसा कोई ही मनुष्य होगा जिसमे केवल गुण-ही-गुण या दुर्गुण-ही-दुर्गुण हों। हाँ यह अवश्य है कि किसी आदमी में कोई ऐसा बड़ा सद्गुण

होता है, जिससे उसके समस्त दुर्गुण छिप जाते है तथा वह प्रशसनीय माना जाता है और किसी आदमी मे कोई ऐसा वडा दुर्गुण होता है, जिससे उसके सद्गुणो पर पर्दा पड़ जाता है और वह निन्द्य माना जाता है। यह नियम सारे संसार के लिए है। मनुष्य की गुरुता, लघुता भी इसी के अधीन है। मैं यह नही कहता कि कृष्ण इस नियम से वचे हुए है, यानी उनमे सर्वथा गुण ही हैं। परन्तु उनके गुणों के आधिक्य ने उनके समस्त दूषणो को ढाक दिया है और आज उनके समान प्रशसनीय दूसरा कोई नही माना जाता। श्रेष्ठजनों मे उनका आदर है, प्रभाव है और वे कुलीन माने जाते हैं। उनके विरुद्ध तुमने जो वाते कही है, वे ठोक नही है। तुम्हे किसी ने भ्रम में डाल दिया है। उनके साथ रुक्मिणी का विवाह करना, न करना दूसरी वात है परन्तु किसी प्रतिष्ठित पुरुष के विपय में वुरे विचार रखना ठीक नही। मेरा विश्वास तो यही है कि कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करने से अपने गौरव की वृद्धि ही होगी।

रुक्म—आप मुझे भ्रम मे समझ रहे है, लेकिन वास्तव मे भ्रम आपको है। श्रेष्ठसमाज मे कृष्ण का कदापि आदर नही है, किन्तु वह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उसके साथ रुक्मिणी का विवाह करने से श्रेष्ठसमाज के समीप हम भी घृणास्पद ही माने जायेगे; हमारा गौरव कदापि नही वढ़ सकता। आप कुछ भी कहिये, कृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह से मैं कदापि सहमत नही हो सकता, न अपने रहते

अपनी वहिन का ऐसे अयोग्य के साथ विवाह ही होने दे सकता हूँ।

मत्री ने देखा कि इन पिता-पुत्र का मतभेद वढता जा रहा है। उसने विचार किया कि यदि इस मतभेद को शांत न किया और वढने दिया गया तो यह भीषण गृहकलह के रूप में परिणत हो जायेगा। इसलिये इस मतभेद को इसी समय शान्त कर देना उचित है। यद्यपि उद्दडता रुक्म की ही है, परन्तु इस समय उसे कुछ कहना अग्नि मे घी डालने के समान होगा। मूर्ख और बुद्धिमान के वाग्युद्ध में बुद्धिमान को ही शांत रहने के लिये कहा जा सकता है। मूर्ख को शात रहने के लिए कहना तो उसकी मूर्खता के प्रदर्शन का क्षेत्र वढ़ाना है। इस प्रकार विचार कर मन्त्री ने भीम से कहा—महाराज, यह वात दूसरी है कि आपके विचार से रुक्मकुमार असहमत हैं, परन्तु आप अपने विचार प्रकट कर चुके है। इसलिये अव आपको वाद-विवाद मे पडने की आवश्यकता नही है। ऐसा करने से कार्य तो अपूर्ण रह ही जायेगा, साथ ही गृहकलह भी सम्भव है। इसलिये अव आप शात होइये। आपने रुक्मिणी के योग्य कृष्ण को वर वताया, परन्तु रुक्मकुमार कृष्ण को रुक्मिणी के योग्य नही मानते, इसलिये अव इन्ही से पूछना चाहिये कि इनकी दृष्टि मे रुक्मिणी के योग्य वर कौन है? उद्देश्य तो रुक्मिणी के वर का विचार करना है, किसी की गुरुता-लघुता के वाद-विवाद में पड़ना उद्देश्य नही है।

मन्त्री की बात सुनकर भीम ने कहा—अच्छी बात है, देखे रुक्म की दृष्टि मे रुक्मिणी के योग्य वर कौन है ?

मन्त्री ने रुक्म से कहा—कुमार, यदि महाराज द्वारा प्रस्तावित श्रीकृष्ण रुक्मिणी के योग्य वर नही हैं, तो अब आप ही बताइये कि रुक्मिणी के योग्य वर कौन है ?

रुक्म—हॉ, यह अवश्य बताऊँगा। मैंने पहले से ही रुक्मिणी के योग्य वर का विचार कर लिया है। चन्देरी के राजा शिशुपाल रुक्मिणी के पति बनने के सर्वथा योग्य है, वे कुलीन भी हैं। उनके कुल जैसा निष्कलंक कुल ढूढने पर भी मिलना कठिन है। उनके बल-वैभव का तो कहना ही क्या है! महाराज जरासन्ध भी उनकी धाक मानते है और उन्हे सम्मान सहित अपने पास बैठाते हैं। ९९ राजा उनके आज्ञाकारी हैं। रूप गुण मे भी वे कम नही हैं। वे युवक भी हैं। किसी भी दृष्टि से विचार करे, रुक्मिणी के योग्य वर शिशुपाल ही है और शिशुपाल के साथ विवाह-सम्बन्ध करने पर अपनी भी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

रुक्म की बात का उसकी माता शिखावती ने भी समर्थन किया। वह भी कहने लगी कि रुक्मकुमार का कथन ठीक है, शिशुपाल रुक्मिणी के अनुरूप वर हैं। मैंने जब से उनकी प्रशंसा सुनी है, तभी से मेरी भावना यही है कि रुक्मिणी का विवाह चन्देरीराज शिशुपाल के साथ हो।

रानी के इस समर्थन से मन्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विचारने लगा कि महारानी इस प्रकार अपने पुत्र की बात

का समर्थन कैसे कर रही है ! इन्होने शिशुपाल की प्रशंसा सुनी होगी तो रुक्म के द्वारा ही सुनी होगी और रुक्म शिशुपाल का मित्र है तथा अनुभवहीन है। महारानी ने इसकी बात पर विश्वास करके महाराज की बात पर अविश्वास कैसे किया ! इनके लिए ऐसा करना कदापि उचित न था, लेकिन इस समय क्रोध-मूर्ति मूर्ख रुक्म के सामने औचित्य का विचार लाना, गृहकलह का सूत्रपात करना है। राजा भीम भी सोच रहे थे कि रानी ने अपने वृद्ध पति की अपेक्षा युवक पुत्र का पक्ष समर्थन करने मे अपना हित देखा है। इसने अपना हित देखकर रुक्म की बात का समर्थन तो कर दिया है परन्तु इसने किया है अन्याय ही। पुत्र की बात पर विश्वास करने और मेरी बात पर अविश्वास करने का रानी के समीप कोई कारण न था। रानी ने मेरी बात पर अविश्वास करने का कारण न होते हुए भी हितलोलुपता से ही पतिव्रत-धर्म को ठुकराया है।

राजा भीम और मन्त्री तो इस प्रकार विचार रहे थे, परन्तु रुक्म प्रसन्न हो रहा था माता द्वारा अपनी बात पुष्ट हो जाने से। रुक्म ने अपने को विजयी माना। वह वारम्वार यही कहने लगा कि देखो मेरी बात से माता भी सहमत है, मैने जो कुछ कहा है उसकी वास्तविकता ही ऐसी है; इस लिये आप सव को भी मेरी ही बात से सहमत होना चाहिए।

मन्त्री ने सोचा कि महाराज के प्रस्ताव के विरोध में पहले तो अकेला रुक्म ही था, लेकिन अव तो उसकी माता

भी उनका साथ दे रही है। अब यदि महाराज ने अपने पक्ष को खींचा तो भयंकर गृहकलह मच जायेगा; जिसमें एक ओर माता सहित रुक्मकुमार होगा और दूसरी ओर वृद्ध महाराज होंगे। इस गृहकलह का परिणाम अच्छा नहीं निकल सकता। इस प्रकार विचार कर उसने राजा भीम से कहा कि महाराज किसी मतभेद की बात को विशाल रूप देने से आपकी ही हानि है। बुद्धिमान वही है जो ऐसे समय में अपनी बात को ढील दे दे। जब महारानी सहित रुक्मकुमार कृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह का विरोध कर रहे हैं और शिशुपाल के साथ विवाह करना चाहते हैं, तब आपकी इच्छा अनुसार विवाह होने में भयंकर गृहकलह की संभावना है। इसलिये यही अच्छा है कि राजकुमारी का विवाह राजकुमार और महारानी की इच्छानुसार ही होने दिया जावे।

राजा भीम ने भी विचारा कि उद्दण्ड रुक्म के सम्मुख वैसे भी मेरी इच्छानुसार कार्य होना कठिन था और अब तो उसे अपनी माता का भी बल प्राप्त है। यदि मैंने इसकी बात का खंडन और अपनी बात पुष्ट करने की चेष्टा की तो मन्त्री के कथनानुसार अवश्य ही विरोध बढ़ जायेगा और ऐसा होने पर अपनी हानि भी होगी तथा दूसरे लोग भी हँसेंगे। इस प्रकार विचार कर राजा भीम ने कहा कि यद्यपि मेरी इच्छा तो कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करने की है, मिथ्याभिमानी शिशुपाल के साथ मैं रुक्मिणी

का विवाह करना कदापि उचित नहीं समझता, फिर भी मैं इनके कार्य का विरोध न करूँगा, किन्तु इस विषय में तटस्थ रहूँगा। रुक्म और उसकी माता को जैसा उचित जान पड़े, करें। परन्तु मै उनके कार्य से सहमत न होऊँगा। हा इतना अवश्य कहूँगा कि प्रत्येक कार्य के परिणाम को पहले विचार लेना अच्छा है, जिसमें फिर पश्चाताप न करना पड़े।

यह कहकर अनिच्छापूर्वक रुक्मिणी के विवाह का भार रुक्म और उसकी माता पर छोड़कर राजा भीम उस सभा से उठ गये। दूसरे लोग भी अपने-अपने स्थान को गये। रुक्म भी प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान को गया। उसे अपने वृद्ध पिता के असन्तोष का कोई विचार न था, किन्तु वह अपने को विजयी मानकर प्रसन्न हो रहा था।

२ : शिशुपाल से सगाई

क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसार साधनम् ।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थात्—क्रोध ही मन की पीड़ा का मूल है, क्रोध ही संसार-सागर मे भ्रमण कराने वाला है । क्रोध से ही धर्म का नाश होता है । अतएव क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

क्रोधी और उद्दंड मनुष्य जब किसी पक्ष को पकड लेता है, तब न तो वह उसे छोडना ही चाहता है और न उसके परिणाम पर ही विचार करता है । वह हठ मे पड़ जाता है । उसे तो अपनी बात पूरी करने की धुन रहती है, फिर उस बात मे सत्य का अश हो या न हो । ऐसे लोग एक पक्ष को पकड़कर सत्य, न्याय और अपने श्रद्धेयजनो की भी अवहेलना कर डालते है ।

रुक्म भी अपनी बहिन के विवाह के विषय में एक पक्ष को पकड़ बैठा । उसका पक्ष कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह न करके शिशुपाल के साथ करने मे है । इस पक्ष मे पड़कर उसने अपने पिता भीम की उचित बातो पर विचार भी नही किया । बल्कि एक प्रकार से उसने भीम का अपमान किया । यह करके भी उसे पश्चाताप नही है,

किन्तु गर्व है और अपने आपको विजयी मान रहा है ।

बुद्धिमान और अनुभवी भीम अपनी बात के लिये गृहकलह होने देना अनुचित समझकर सत्य और न्याय के भरोसे पर रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये । भीम के तटस्थ हो जाने से रुक्म को प्रसन्नता हुई । वह विचारने लगा कि अब तक पिताजी अपनी इच्छानुसार कार्य करते रहे है, लेकिन अब हमारी इच्छानुसार होगा । पिताजी पुराने विचार के आदमी है, इस नये युग मे पुराने विचारों के काम उपयुक्त नही हो सकते ।

रुक्म ने अपनी माता से कहा कि पिताजी रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये हैं । वे उदासीनता धारण किये बैठे रहेगे, यह सम्भव नही । मेरा अनुमान है कि वे बैठे-बैठे ऐसी कोई-न-कोई कार्यवाही अवश्य करेंगे जो अपने कार्य में बाधक हो । इसलिए अपने को बहुत सावधानी से काम करने की आवश्यकता है, जिसमें किसी प्रकार की बद-नामी भी न हो और पिताजी को यह कहने का मौका भी न मिले कि मेरे कथन के विरुद्ध काम करने से यह दुष्परिणाम निकला । बल्कि रुक्मिणी के विवाह का भार पिताजी ने अपने पर डाल दिया है । मेरी समझ से अब रुक्मिणी का विवाह शीघ्र ही कर देना चाहिए, जिसमे फिर किसी विघ्न का भय ही न रहे ।

रुक्म की माता ने रुक्म की इस बात का समर्थन किया । माता की सहमति पाकर रुक्म ने ज्योतिषी को बुलाने की

आज्ञा दी । ज्योतिषी के आ जाने पर रुक्म ने उससे कहा कि बहन रुक्मिणी का विवाह चन्देरी-नरेश शिशुपाल से करने का विचार है; इसलिए लग्नतिथि शोध निकालो ।

ग्रह, नक्षत्र, कुंडली आदि देखकर ज्योतिषी रुक्म से कहने लगा कि राजकुमारी के विवाह के लिए तिथि माघ कृष्ण ८ श्रेष्ठ है । कुंडली-अनुसार इस तिथि को राजकुमारी का विवाह अवश्य होगा, लेकिन शिशुपाल के साथ विवाह नही जुड़ता है इसलिए राजकुमारी का विवाह शिशुपाल के साथ ही होगा यह मैं नही कह सकता । शिशुपाल के साथ राजकुमारी का विवाह होने में बहुत सन्देह है । मुझे तो इसमें बड़े बड़े विघ्न दिखाई दे रहे हैं । इस पर भी आप शिशुपाल के ही साथ राजकुमारी रुक्मिणी का विवाह करना चाहते है; तो विघ्नों से सावधान रहियेगा ।

ज्योतिषी की बात सुनकर रुक्म ने सोचा कि सम्भवतः इसे पिताजी और मेरे मतभेद की बात मालूम हो गई है, इसी से यह पिताजी की बात पुष्ट करने के लिए मुझे विघ्नो का भय बता रहा है। उसने ज्योतिषी से कहा कि विघ्न की चिंता अनावश्यक है । विघ्नों को नष्ट करने की हममे पर्याप्त शक्ति है, परन्तु उस तिथि को रुक्मिणी का विवाह तो बनता है न ? ज्योतिषी ने कहा—हाँ बहुत श्रेष्ट लग्न है और उस दिन रुक्मिणी का विवाह भी अवश्य ही होगा ।

रुक्म—बस ठीक है, अब आप जाइये । आप से काम हो गया । विघ्नों से तो हम निबट लेगे ।

ज्योतिषी को विदा करके रुक्म ने अपने मन्त्री को बुलाकर उससे कहा कि बहन रुक्मिणी के विवाह का टीका चन्देरीराज शिशुपाल के यहाँ भेजना है। तुम किसी ऐसे चतुर व्यक्ति की खोज करो जो टीका ले जाये और स्वीकार करा आये।

मन्त्री—विवाह का टीका तो भाट ही ले जाया करते है। टीका ले जाना उन्ही का काम है। अपने राजघराने के टीके ले जाने का कार्य सरसत भाट किया करता है। भाट चतुर भी होते हैं। उनकी बातों में ऐसी चतुराई हुआ करती है कि वे कायरों में भी वीरता भर देते हैं और उन्हे भी युद्ध के लिये उत्तेजित कर देते है। सरसत भाट भी बहुत चतुर है। मुझे विश्वास है कि वह चन्देरीराज को टीका स्वीकार करा आयेगा।

रुक्म—हाँ तुमने ठीक कहा। सरसत वास्तव में वाक्-चतुर है। उसी के द्वारा भेजना ठीक है। तुम सरसत को बुलवाओ और उसे कहला दो कि वह चन्देरी जाने के लिए तैयार होकर आये।

रुक्म की आज्ञा से मन्त्री ने सरसत भाट को सूचित किया। रुक्म के स्वभाव से सरसत भाट परिचित ही था और रुक्मिणी के विवाह के विषय मे भीम और रुक्म के मतभेद को भी वह सुन चुका था। मन्त्री की सूचना-अनुसार सरसत भाट रुक्म के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने रुक्म को आशीर्वाद दिया। रुक्म ने कहा—सरसत तुम्हें बहिन रुक्मिणी के विवाह का टीका लेकर चन्देरी जाना होगा। तुम चन्देरी

जाने के लिए मेरी सूचनानुसार तैयार होकर ही आये होओगे ?

सरसत—हाँ महाराज, मुझे सूचना मिल चुकी थी और मैं तैयार होकर ही आया हूँ।

रुक्म—देखो, तुम्हारे चन्देरी जाने की खबर पिताजी को न होने पाये। पिताजी रुक्मिणी का विवाह उस ग्वाल के साथ करना चाहते थे, चन्देरीराज शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करने मे वे सहमत नही है। यह तो मेरी ही सामर्थ्य है कि रुक्मिणी उस नीच ग्वाले की पत्नी बनने से बच सकी है, अन्यथा पिताजी ने तो उसके साथ रुक्मिणी के विवाह का एक प्रकार से निश्चय-सा कर लिया था। यद्यपि अब पिताजी वैसे तो रुक्मिणी के विवाह से तटस्थ हो गये है परन्तु मेरा अनुमान है कि वे गुप्त रूप से कुछ-न-कुछ अवश्य करेगे। इधर ज्योतिषी ने भी कहा है कि रुक्मिणी के विवाह मे विघ्न होगा और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह होने मे संदेह है। यद्यपि हम क्षत्रिय हैं, विघ्न से भय नही खाते है, विघ्न की सूचना मिलना ही हमारी विजय का शुभ चिह्न है; फिर भी विघ्न की ओर से साव-धान रहना उचित है। इसलिए तुम चन्देरीराज शिशुपाल को मेरी कही हुई इन बातो से सूचित कर देना और कह देना कि विवाह के समय विघ्नों की सम्भावना है। बहुत सम्भव है कि पिताजी के सदेश पर या स्वयं ही नीच कृष्ण यहाँ आकर उत्पात करे। उसका कुछ विश्वास नही है। इस प्रकार की नीचता करना उसके लिये बहुत साधारण बात है।

अत' चन्देरीराज साधारण बारात लेकर ही न चले आये; किन्तु इस प्रकार की तैयारी से आये कि आवश्यकता होने पर युद्ध भी किया जा सके। यदि कपटी कृष्ण यहाँ आया तो हमारे द्वारा उसका अवश्य ही नाश होगा। चन्देरीराज की और मेरी सम्मिलित शक्ति के सामने उसका जीवित बचा रहना सर्वथा असम्भव है। एक तरह से उसका यहाँ आना अच्छा भी है। चन्देरीराज उस दुष्ट ग्वाले पर रुष्ट है। यदि वह ग्वाला यहाँ आया और यहाँ मारा गया तो हम चन्देरीराज और मगधराज के यशपात्र माने जायेंगे। जो भी हो, महाराज शिशुपाल सावधानी से आये और विवाह-तिथि से कुछ समय पहले आये; जिसमे प्रत्येक विषय पर विचार-विनिमय भी किया जा सके। टीके के सम्बन्ध में तो तुम्हें कुछ समझाने की आवश्यकता ही नही है। तुम स्वय चतुर हो, अतः महाराज शिशुपाल को टीका चढ़ाकर ही आना; टीका वापस न लौटने पाये। ज्योतिषी ने लग्न के लिए तिथि माघ कृष्णा ८ शुभ बताई है। इसे ध्यान मे रखना और इस तिथि को विवाह हो जाये, ऐसा उपाय करना। मैं टीके के साथ जाने वाला पत्र लिखवाकर टीका सामग्री के साथ तुम्हें दिये देता हूँ और तुम्हारी सहायता के लिए कुछ योद्धा भी तुम्हारे साथ किये देता हूँ।

रुक्म ने अपनी ओर से शिशुपाल के नाम पत्र लिखवाया, जिसमें उससे रुक्मिणी के साथ विवाह करने का आग्रह किया गया था। रुक्म ने अपना पत्र, शिशुपाल के लिये भेंट-

सामग्री तथा टीका तैयार करके सरसत भाट को सौप दी और एक बढ़िया रथ में सरसत को बैठाकर उसे कुछ योद्धाओं के साथ चन्देरी के लिये विदा किया ।

किसी कार्य के औचित्य को प्रकृति स्पष्ट बता देती है । वह अपने किसी सकेत द्वारा कह देती है कि यह कार्य उचित है और यह अनुचित । यह बात दूसरी है कि प्रकृति के सकेत की अवहेलना करके अनुचित कार्य भी किया जाये लेकिन इसमे कार्य करने वाले का ही दोष है, प्रकृति का दोष नही है । प्रकृति सकेत-द्वारा कार्य के हिताहित की ओर निर्देश करके अपना कर्तव्य पूरा कर देती है । फिर जो उसकी सम्मति नही मानता उसे कार्य का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है ।

प्रकृति जिन सकेतो द्वारा कार्य के औचित्य-अनौचित्य का निर्देश करती है, उनमे से कार्य को उचित बताकर उसका समर्थन करने वाले सकेत शुभशकुन कहे जाते है और कार्य को अनुचित बताकर उसका निषेध करने वाले सकेत अप-शकुन कहे जाते हैं । आस्तिकों में अधिकाश लोग ऐसे निक-लेंगे जो प्रकृति के ऐसे सकेतो को जानते और उन पर विश्वास करते हो । भाट लोग तो प्रकृति के इन सकेतों के फलाफल-विचार को भली प्रकार जानते और उन पर विश्वास भी करते है ।

सरसत भाट चन्देरी के लिये चला । वह नगर से बाहर भी नही हुआ था कि उसे सामने एक नकटी और कुरूपा कन्या

सिसक-सिसक कर रोती हुई मिली । इस अपशकुन को देखते ही सरसत सहम उठा । वह अपने मन मे कहने लगा कि प्रकृति इस कार्य से सहमत नही है; अपितु वह विरोध करती है। सरसत इस प्रकार विचार ही रहा था कि एक विधवा स्त्री अपने सिर पर औंधा रीता घड़ा लिए सामने मिली । इस दूसरे अपशकुन को देखकर सरसत ने विचार किया कि इस कार्य की विपरीतता और असफलता की सूचना प्रकृति स्पष्ट दे रही है । वास्तव में जिस कार्य से वृद्ध तथा अनुभवी लोग असहमत है, जो कार्य उनकी सम्मति के विरुद्ध किया जा रहा है, उसमे विघ्न और असफलता स्वाभाविक है । इन अपशकुनो पर से तो चन्देरी के लिए आगे वढ़ना ही न चाहिए था, परन्तु वापस लौटकर भी किसके सामने जाऊँ। दुष्ट रुक्म ने जव अपने वाप की ही वात नही मानी, तव वह मूक अपशकुनों को कव मानेगा ! लौट जाने पर रुक्म का कोप-भाजन वनना होगा; इसलिए चन्देरी जाने मे ही अपनी कुशल है ।

सरसत भाट आगे वढ़ा । वह जैसे ही नगर से वाहर निकला, वैसे ही उसे हीजड़े मिले। सरसत की दृष्टि मे यह भी अपशकुन ही था, परन्तु उसकी विवशता ने उसे लौटने न दिया। उसने यह भी विचार किया कि नगर में तो अच्छे वुरे सभी लोग रहते हैं, इसलिए उनका सामने मिलना स्वाभाविक ही है; देखे अव मार्ग मे कैसे शकुन होते हैं ? वह चन्देरी के मार्ग पर आगे वढ़ा । सरसत वन के मार्ग मे कुछ

ही दूर गया था कि उसने अपनी बायी ओर श्यामा को—जिसे कोचरी या भैरवी भी कहते है—बोलते देखा। सरसत ने इसे भयङ्कर अपशकुन माना और वह अपने मन में कहने लगा कि यह पक्षी इस कार्य का तीव्र विरोध कर रहा है तथा इस कार्य को करने से रोक रहा है। वह इस प्रकार विचार ही रहा था कि हरिण उसका मार्ग काट गये। सरसत सोचने लगा कि अब तो अपशकुन चरमसीमा के समीप पहुँच चुके हैं; परन्तु मैं क्या करूँ ! मेरे लिए तो कुंडिनपुर लौटकर जाना मृत्यु को बुलाना है। चाहे जैसे अपशकुन हों, मुझे तो चन्देरी जाना ही होगा, फिर जो दुष्परिणाम होगा वह मूर्ख रुक्म के साथ हम सब को भी भुगतना ही पड़ेगा।

अपशकुनों का सामना करता हुआ सरसत चन्देरी पहुँचा। मार्ग मे उसे अन्य किसी विघ्न का सामना नही करना पड़ा। हाँ, अपशकुनों के कारण उसको खेद अवश्य रहा। चन्देरी पहुँचकर वह जैसे ही नगर में प्रवेश करने लगा, वैसे ही उसे फिर अपशकुन हुए। सरसत ने अपने मन में कहा—अपशकुनो, तुम कितना ही विरोध करो; मुझे तो चन्देरीराज के यहाँ जाना ही होगा। यद्यपि तुमने कुन्डिनपुर और मार्ग मे यह स्पष्ट कर दिया कि कुन्डिनपुर के लिए क्यों विपत्ति बुलाने जा रहे हो और अब यहाँ भी तुम यही कह रहे हो कि चन्देरी मे सन्ताप क्यों लाये हो, परन्तु कुन्डिनपुर के लिए विपत्ति और चन्देरी के लिए सन्ताप मै नही बुला रहा हूँ। मै अपनी ओर से निर्दोष हूँ। जो कुछ भी कर रहा है वह

मूर्ख रुक्म ही कर रहा है।

सरसत भाट राजमहल के द्वार पर पहुँचा। उसने द्वारपाल द्वारा शिशुपाल के पास बधाई भेजी और निवेदन कराया कि मैं सरसत भाट कुन्डिनपुर से वहाँ की राजकुमारी के विवाह का टीका लेकर आपको चढ़ाने आया हूँ। द्वारपाल ने सरसत की कही हुई सब बातें शिशुपाल को जा सुनाईं। शिशुपाल बहुत प्रसन्न हुआ। वह विचारने लगा कि कुन्डिनपुर के राजा भीम के एक ही कन्या है जिसकी बहुत प्रशंसा है और जो रूप, गुण तथा लक्षणों से बहुत उत्तम मानी जाती है। उसके विवाह का टीका मेरे लिये आया है, इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है! इस विवाह से मुझे सर्वोत्तम पत्नी प्राप्त होने के साथ ही रुक्म जैसे बलवान का अटल सहयोग भी प्राप्त होगा।

शिशुपाल ने द्वारपालों को आज्ञा दी कि वे सरसत भाट को स्वागतपूर्वक सभा में लायें। द्वारपालादिकों ने दही, अक्षत आदि मंगल-द्रव्य आगे करके सरसत भाट का स्वागत किया। सरसत भाट अपने मन में कहने लगा कि इस प्रकार मंगल-द्रव्य बताकर कृत्रिम शुभशकुन करने से कुछ नहीं होता। शुभशकुन, अपशकुन जो होने थे वे तो पहले ही हो चुके। सरसत शिशुपाल के दरबार में उपस्थित हुआ। उसने शिशुपाल को आशीर्वाद दिया। शिशुपाल ने भी उसका सम्मान किया और उसे योग्य आसन दिया।

सरसत भाट से शिशुपाल पूछने लगा—कुन्डिनपुर में

सब कुशल तो है ? महाराज भीम और हमारे मित्र रुक्म तो प्रसन्न है ?

सरसत—आपकी कृपा से अब तक तो सब आनन्द मंगल है। रुक्मकुमार भी आपकी कुशल चाहते हैं।

शिशुपाल—तुम्हारा आगमन किस अभिप्राय से हुआ ?

सरसत—कुण्डिनपुर के महाराज भीम के एक कन्या है; जिसका नाम रुक्मिणी है। रुक्मिणी गुण और सौन्दर्य की तो खान ही हैं परन्तु वे सुलक्षणा भी ऐसी है कि कुछ कहा नही जाता। विदर्भ देश उनके जन्म के पश्चात दरिद्रता से मुक्ति पाकर धनवान हो गया है। राजपरिवार में भी सब प्रकार आनन्द-मगल रहता है और महाराज भीम का कोष भी अक्षय बन गया है। इस प्रकार उसके सुलक्षणों के प्रताप से विदर्भ देश में नित्य प्रति आनन्द ही रहता है।

सरसत भाट से रुक्मिणी की प्रशसा सुनकर शिशुपाल अपने मन में यह विचारता हुआ प्रसन्न हुआ कि ऐसी सुलक्षणा कन्या मेरी पत्नी बनेगी। उसने सरसत से कहा—हाँ कुण्डिनपुर की राजकुमारी की मैंने भी ऐसी ही प्रशंसा सुनी है।

सरसत—राजकुमारी विवाह के योग्य हुई हैं। अभी उस दिन राजकुमारी के विवाह के विषय में विचार करने के लिये महाराज भीम ने एक सभा की, जिसमें राजकुमार, महामन्त्री और राजपरिवार के लोग सम्मिलित हुए थे। महाराज ने राजकुमारी का विवाह कृष्ण के साथ करने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने कृष्ण की अधिक प्रशंसा की। उसे इन्द्र

से भी बड़ा बताया। उसके बचपन के पराक्रम का वर्णन किया। यह बताया कि उसने लीला मात्र में ही पूतना राक्षसी को मार डाला, काली नाग को नाथ डाला, गोवर्द्धन पर्वत को उगली पर उठा लिया और कस को मार कर उग्रसेन को पुनः राजा बनाया।

सरसत के मुख से कृष्ण की बडाई सुन-सुनकर शिशुपाल मन-ही-मन मे जलने लगा। वह विचारने लगा कि यह भाट बड़ा ही धृष्ट है जो मेरे सामने कृष्ण की बडाई कर रहा है और मेरे सभासदों को इस प्रकार कृष्ण के पराक्रम से परि-चित कर रहा है। इसे रोकना भी ठीक नही है, क्योकि यह कृष्ण की बडाई अपनी ओर से नही कर रहा है किन्तु राजा भीम ने इस प्रकार प्रशसा की, यह बता रहा है।

शिशुपाल की मुखाकृति उसके हृदय के भाव को बताने लगी। सरसत शिशुपाल की मुखाकृति देखकर ताड़ गया कि इसे कृष्ण की प्रशसा असह्य हो रही है। अब यदि मैने बात न पल्टाई तो कार्य बिगड़ जायेगा। इस प्रकार विचार कर सरसत ने वात बदल दी। वह आगे कहने लगा—इस प्रकार महाराज भीम ने तो कृष्ण की प्रशंसा की। परन्तु रुक्म ने कृष्ण का विरोध किया और आपकी प्रशंसा की। राजकुमार ने आपका पक्ष लेकर राजकुमारी का विवाह आपके साथ करने का प्रस्ताव किया। महाराज और राजकुमार में इस प्रकार मतभेद हो गया। अन्त में मन्त्री की सम्मति से राज-कुमारी के विवाह का भार राजकुमार पर डाल कर महाराज

तटस्थ हो गये। राजकुमार को तो अपनी बहिन का विवाह आप ही से करना इष्ट था इसलिए उन्होने यह पत्र लिखकर दिया है और टीका तथा भेंट-सामग्री भेजी है। आप इसे स्वीकार कीजिये। एक बात और है जो मैं निवेदन किये देता हूँ। रुक्म ने यह पत्र महाराज से छिपाकर लिखा है, उन्होने यह भी कहा है कि आप साधारण बारात लेकर ही न चले आये।

सरसत ने शिशुपाल को रुक्म का पत्र देकर टीका तथा भेंट-सामग्री उसके सामने रख दी और वह समस्त बात भी उसे सुना दी जो रुक्म ने उससे कहने के लिये कही थी। शिशुपाल रुक्म का पत्र पढ़कर सरसत से कहने लगा—महाराज भीम वृद्ध हुए हैं। अब उनकी बुद्धि बराबर काम नही करती, इसीसे उन्होने उस ग्वाल की प्रशसा करके उससे अपनी कन्या का विवाह करने का विचार किया था। समझ में नही आता कि जो कृष्ण हमारे भय से समुद्र के किनारे भाग गया, जो नीच जाति का और गुणहीन है उसे भीम ने अपनी कन्या देने का विचार कैसे किया था। यह तो अच्छा हुआ कि युवक और बुद्धिमान रुक्म ने अपनी बहिन का विवाह उसके साथ नही होने दिया, अन्यथा हम क्षत्रियों के लिए बड़े कलंक की बात होती। एक क्षत्रिय-राजकन्या नीच ग्वाले को दी जाये इससे अधिक कलंक और लज्जा की बात दूसरी क्या हो सकती है। रुक्म विचारशील व्यक्ति हैं। वे सब बातों को जानते हैं। उनको क्षत्रियों की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान है। मेरे मित्र होने के कारण वे क्षत्रियों के मानसन्मान से परिचित हैं। मुझे भी

रुक्म का ध्यान रहता है। मै अपनी शक्ति भर उनका पक्ष कदापि नही गिरने दे सकता। मुझे अब विवाह नही करना था फिर भी मै रुक्म की बात और क्षत्रियों के सन्मान की रक्षा के लिए यह टीका स्वीकार करता हूँ।

शिशुपाल की वात सुनकर सरसत अपने मन मे कहने लगा कि तुमने यह टीका स्वीकार तो किया है परन्तु क्या ठीक है कि रुक्म की बात की रक्षा में तुम्हें अपना सम्मान भी खोना पडे। उसने शिशुपाल से कहा कि—रुक्म का विश्वास सही निकला। रुक्म को पहले ही से विश्वास था कि मेरी वात को चन्देरीनरेश व्यर्थ न जाने देगे। रुक्म ने लग्नतिथि की शोध भी करा ली है। माघ कृष्ण ८ लग्न के लिए निकली है। आप भी अपने ज्योतिषी से विश्वास कर लीजिये और इस तिथि की स्वीकृति दीजिये।

शिशुपाल—हाँ ठीक है, शुभ काम मे अनावश्यक विलम्ब हानिप्रद है।

शिशुपाल ने ज्योतिषी को बुलाने की आज्ञा दी। ज्योतिषी के आ जाने पर शिशुपाल ने उसे कुन्डिनपुर से आये हुए टीके की बात से परिचित किया और विवाह-तिथि पर विचार करने के लिए कहा। ज्योतिषी ने सरसत से रुक्मिणी की जन्मकुण्डली लेकर उसे देखा। उसने रुक्मिणी और शिशुपाल की जन्मकुण्डली आपस मे मिलाकर तथा कुछ विचार कर नकारात्मक रूप मे सिर हिलाया। शिशुपाल विचारने लगा कि यह ज्योतिषी कैसा मूर्ख है! जो सभा के मध्य इस प्रकार

सिर हिलाया है ! उसने ज्योतिषी से पूछा कि—क्या रुक्म की भेजी हुई विवाह-तिथि ठीक नही है ?

ज्योतिषी—तिथि के ठीक होने का प्रश्न तो फिर है, पहले तो विवाह ही ठीक नही है । मैने अनेको की जन्मकुण्डली देखी है परन्तु इस कन्या की ग्रहदशा जैसी ग्रहदशा दूसरी जन्म-कुण्डली मे नही देखी । ग्रहदशा देखते हुए इस कन्या की समता करनेवाली दूसरी कन्या ससार मे है ही नही । यह कन्या शरीरधारणी शक्ति ही मालूम होती है । मैंने बहुत-बहुत विचार किया परन्तु इस कन्या का विवाह आपके साथ बनता ही नही है । आज मैं आपके क्रोध से भय खाकर अपनी आजीविका की रक्षा के लिये स्पष्ट बात न कहूँ तो तब जब कोई अनिष्ट परिणाम होगा, आप मुझे और मेरी ज्योतिष-विद्या को धिक्कार देगे । इसलिये मैं अभी ही सच्ची बात कह देता हूँ कि इस कन्या के योग्य आप नही है । इस कन्या का विवाह आपके साथ कदापि नही हो सकता । इसका विवाह तो किसी असाधारण पुरुष के साथ होगा । यदि आप मेरी बात न मानकर इस कन्या के साथ विवाह करने के लिये गये तो आपको अपमानित होकर खाली हाथ लौटना पड़ेगा । इसलिए इसी में कुशल है कि आप यह विवाह स्वीकार ही न करें । यह कहकर टीका वापिस कर दे कि हमारे ज्योतिषी ने इस विवाह को ठीक नही बताया । ऐसा करने से आप भविष्य मे अपमानित और कलकित होने से बच जायेगे ।

ज्योतिषी की बात सुन सरसत अपने मन मे कहने लगा

कि यह ज्योतिषी विल्कुल ठीक कहता है। जो वात मार्ग के अपशकुनो ने और कुन्डिनपुर के ज्योतिपी ने कही, वही यह भी कहता है। सरसत तो अपने मन में इस प्रकार विचार रहा था लेकिन शिशुपाल के वदन में ज्योतिषी की वातों पर से आग-सी लग रही थी। ज्योतिपी की वात समाप्त होते ही शिशुपाल उससे कहने लगा कि तुम निरे मूर्ख ही जान पड़ते हो! कुन्डिनपुर की राजकुमारी यदि असाधारण पुरुप को विवाही जायेगी तो मैं क्या साधारण पुरुष हूँ! फिर कैसे कह रहे हो कि विवाह लौटा दो? जान पड़ता है, तुम्हे किसी ने वहकाया है; इसी से तुम विवाह लौटा देने को कह रहे हो। हम समर्थ है। हमारे सामने ज्योतिपी या ज्योतिष का वल नही चल सकता। हम तो केवल प्रथा पालन के लिये इस प्रकार पूछ लिया करते हैं। समर्थ को किसी भी समय और किसी कार्य मे दोष नही होता। पुण्य पाप या अच्छा वुरा साधारण लोगों के लिये है, हमारे लिये नही। हम यदि तुम लोगों के कहने को मान ही लिया करे तो राजत्व से भी हाथ धो वैठे। जिस समय हमारी तलवार म्यान से वाहर होती है उस समय ज्योतिप या पुण्य पाप न मालूम कहाँ जा छिपते है। हमारी शक्ति के सामने इनका पता नही रहता। हमारे कार्य शक्ति के आधार से हुआ करते हैं, न कि ज्योतिष के आधार से। इसलिए तुम लोग अपने घर जाओ, हमें तुमसे अधिक कुछ नहीं पूछना है। और देखो तुम राजसभा में वात-चीत करने की योग्यता नही रखते, न सभ्यता ही जानते हो;

इसलिए तुम्हारा 'राज्य-ज्योतिषी' पद आज से नही रहेगा; न जागीर आदि ही रहेगी।

अहकारी लोग अपनी बात के विरोध मे कोई बात सुन सह नही सकते। वे विरोधी बात का समाधान करने के बदले अपनी सत्ता के बल पर विरोधी बात कहनेवाले को दबाने लगते हैं और कभी-कभी उसका भयंकर अहित भी कर डालते है। यह नही देखते कि सत्य और न्याय किसमें है। उनके समीप वही सत्य और वही न्याय है जो उन्हें प्रिय है और जो कुछ वे कहते है। ज्योतिषी की बात पर शिशुपाल को विचार करना चाहिये था, यह देखना चाहिये था कि इसके कथन मे कितना तथ्य है। परन्तु उसने ऐसा न करके अपने क्रोधी और अहकारी स्वभाव का ही परिचय दिया। ज्योतिषी भी सत्य-भक्त था। उसने विचारा कि सच्ची बात कहने से आज अहित होता है और झूठी बात कहने से कुछ दिन बाद अहित होगा! आज सत्य के लिये जो अहित हो रहा है उसके लिए तो यह आशा भी की जा सकती है कि वह कभी हित मे परिणत हो जाये परन्तु झूठी बात कहने पर जो अहित होगा उसकी पूर्ति की तो आशा ही नही की जा सकती। इसलिये आज जो अहित हो रहा है वह भले ही हो लेकिन झूठ बात तो नही कहूँगा। झूठ बात कहने से राजा की हानि तो होगी ही, साथ मे मेरी भी हानि होगी और सच्ची बात कहने पर राजा की हानि तभी होगी जब यह सच्ची बात को न माने। परन्तु जब इसे बात की सचाई मालूम होगी

तब यह स्वयं उस सच्ची बात को न मानने का पश्चाताप करेगा और इस समय जो मेरा अहित कर रहा है उसकी पूर्ति करेगा। अभी यह अहंकार के आधीन हो रहा है। इस समय इससे कुछ कहना व्यर्थ है। इस प्रकार विचार कर ज्योतिषी यह कहता हुआ चला गया कि मैं तो आपके कल्याण की ही कामना करूँगा, आप चाहे मेरी बात मानें या न माने। मै कहूँगा सत्य और आपके हित की ही बात।

ज्योतिषी के चले जाने पर शिशुपाल ने सरसत से कहा कि विवाह-तिथि आदि के विषय मे अब विशेष विचार करने की आवश्यकता नही है। रुक्मकुमार ने जो तिथि निकलवा-कर भेजी है वह हमे भी स्वीकार है, रुक्मकुमार गलत तिथि क्यों भेजेंगे ? विवाह तो उनकी बहिन का ही है न !

सरसत—आपने यह बड़ी अच्छी बात कही। एक जगह लग्न निकल ही चुके हैं, अब इस विषय में विशेष विचार करवाने से अनुकूल प्रतिकूल दोनों ही प्रकार की बातें सुननी पड़ती है।

शिशुपाल ने अपने दरबारियों को टीका स्वीकार होने की खुशी मनाने की आज्ञा दी। दरबार में केसर, गुलाल उड़ने लगे और उत्सव होने लगा।

३ : हितशिक्षा

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

अर्थात्—राजन्, सदा मीठी-मीठी बाते कहने वाले लोग तो बहुत है पर कड़वी तथा हितकारी बाते कहनेवाले और सुननेवाले दुर्लभ हैं।

ससार में प्रिय बात कहने वाले बहुत मिल सकते हैं, परन्तु हित की बात कहनेवाले कोई ही मिलते हैं। प्रिय बात तो सभी कह देगे ! सभी यह सोचेंगे कि अप्रिय बात कह-कर किसी को रुष्ट क्यों करें ! इसकी हानि-लाभ से अपना क्या संबंध, परन्तु यह सोचनेवाले बहुत कम मिलेंगे कि हानि-लाभ से अपना सम्बन्ध हो या न हो, इसे हमारी बात प्रिय लगे या न लगे, हम कहेंगे हित की बात । यह साहस तो वही कर सकता है जिसे सत्य पर विश्वास है; जो सत्य के लिये अपने को आपत्ति में डाल सकता है; जो दूसरे का अहित नहीं देखना चाहता और जो दूसरे की हानि-लाभ को अपनी ही हानि-लाभ समझता है ।

अप्रिय पर हितपूर्ण सत्य बात कहने का साहस किसी-किसी स्त्री में भी इतना अधिक होता है कि जितना साहस कई

पुरुषों मे भी मिलना कठिन है। शिशुपाल की भौजाई भी ऐसी स्त्रियो मे से एक थी। वह सत्यवादिनी, स्पष्टवक्ता और पतिपरायण स्त्री थी। शिशुपाल भी अपनी उस भावज का बहुत ही आदर करता था। किसी भी बड़े कार्य मे वह अपनी भावज की सम्मति लिया करता था। भावज भी बुद्धिमती थी और शिशुपाल से स्नेह रखती थी।

सभा मे उत्सव मनाकर और सरसत भाट को यथास्थान ठहराने का प्रबन्ध करके शिशुपाल भावज के महल की ओर चला। कुन्डिनपुर से टीका आने आदि का शुभ समाचार भावज को सुनाने के लिये शिशुपाल उत्सुक हो रहा था। वह विचारता था कि भावज यह सब समाचार सुनकर प्रसन्न होगी। वे मुझे कृष्ण से वैर न रखने का सदा उपदेश दिया करती हैं, पर रुक्म और भीम का वादविवाद सुनकर उन्हें मालूम हो जायेगा कि कृष्ण कैसा नीच माना जाता है और मैं कैसा श्रेष्ठ माना जाता हूँ! उन्हे यह जानकर भी अवश्य प्रसन्नता होगी कि राजा भीम की लक्ष्मी मानी जाने वाली कन्या रुक्मिणी मेरी देवरानी होकर आयेगी और मेरे चरण-स्पर्श करेगी।

इसी प्रकार के अनेक संकल्प-विकल्प करता हुआ शिशुपाल भावज के महल में आया। कुन्डिनपुर से टीका आने, रुक्म और भीम का मतभेद होने तथा ज्योतिषी द्वारा विवाह का निषेध होने आदि बातें शिशुपाल की भावज ने शिशुपाल के पहुँचने से पहले ही सुन ली थी। शिशुपाल को देखते ही

भावज समझ गई कि देवरजी अपने भावी-विवाह का समाचार सुनाने के लिये ही आये हैं। उसने शिशुपाल का सत्कार करके उसे बैठाया। शिशुपाल आया तो है भौजाई को शुभ समाचार सुनाने, पर हर्ष के मारे वह बोल न सका। उसका गला रुक गया। भौजाई ताड़ गई कि देवरजी को अपार हर्ष है और ये हर्षावेग के कारण बोलने मे भी असमर्थ हैं। उसने स्वय ही शिशुपाल से पूछा कि कहिये देवरजी, आज तो आप बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे हैं। जान पड़ता है कि आज आपको बहुत हर्ष है। आप सदा तो अपने हर्ष मे मुझे भी भाग दिया करते है परन्तु आज तो आप बोलते तक नही ! कहिये तो सही कि आज इतना हर्ष होने जैसी कौन-सी बात हुई है ? क्या कोई आपका शत्रु आपकी शरण आया अथवा आपके अधीन हुआ है या कोई देश विजय हुआ है या कही कोष या खदान निकली है ?

शिशुपाल ने बड़ी कठिनाई से अपने हर्ष के आवेग को रोकते हुए उत्तर दिया—इसमे हर्ष की ऐसी कौन-सी बात है ! ये बाते तो साधारण है जो राजकार्य में हुआ ही करती है।

भौजाई—फिर असाधारण बात क्या हुई है, जिसके कारण इतना हर्ष है।

शिशुपाल—विवाह का टीका आया है।

भौजाई—कहाँ से और किसके लिये ?

शिशुपाल—कुन्डिनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के विवाह

का टीका मेरे लिये आया है। लो यह कुन्डिनपुर का पत्र पढ़ो।

शिशुपाल ने रुक्मकुमार का पत्र भौजाई को दिया। भौजाई ने रुक्मकुमार का पत्र पढ़कर शिशुपाल से कहा कि आपके विवाह का टीका आया है यह तो प्रसन्नता की बात है परंतु इस पत्र में कुन्डिनपुर के राजा भीम का तो नाम भी नही है! यह पत्र तो रुक्मकुमार की ओर से लिखा हुआ है! क्या भीम अपनी पुत्री का विवाह आपके साथ करने में सहमत नही हैं ?

शिशुपाल—हाँ बुड्ढा और बुद्धिमान भीम रुक्मिणी का विवाह उस ग्वाल कृष्ण के साथ करना चाहता था; परन्तु रुक्म ने अपनी बहिन का विवाह उसके साथ नही होने दिया और मेरे साथ विवाह करने के लिये टीका भेजा है।

भावज—अभी आपने स्वीकार तो नही किया न ?

शिशुपाल—ऐसे समय का टीका स्वीकार करने मे विलम्ब करना कौनसी बुद्धिमानी होती ? मैंने तो टीका स्वीकार कर लिया है।

भावज—अभी विवाह-तिथि तो निश्चय नही हुई है ?

शिशुपाल—हो गई। माघ कृष्ण ८ को विवाह है।

भावज—अपने यहाँ के ज्योतिषी ने क्या सम्मति दी थी ?

शिशुपाल—ज्योतिषी मूर्ख है, केवल भ्रम में डालने की बात जानता है। इसके सिवा हम वीर लोग ज्योतिषी के अधीन क्यों रहें। ज्योतिषी के अधीन रहनेवाले कायर हैं।

धीमन्तो वैद्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।

अशक्ताः पौरुषं कर्तु क्लीवा दैवमुपासते ॥

अर्थात्—बुद्धिमान और माननीय लोग पुरुषार्थ को ही बड़ा मानते है, दैव या प्रारब्ध की उपासना तो पुरुषार्थ न कर सकने वाले नपुसक ही करते है ।

भावज—तब भी उसने कहा क्या था ?

शिशुपाल—वह कहता था कि टीका लौटा दो, विवाह मत करो; लेकिन मैं उसकी बात मानकर क्षत्रियों के लिये कलक की बात कैसे होने दे सकता था ।

भावज—मेरी समझ से तो ज्योतिपी की बात माननी चाहिये । यह विवाह स्वीकार न करना चाहिये । जिस विवाह मे भीम सहमत नही है अपितु उनका विरोध है, उस विवाह को अस्वीकार करने मे ही कल्याण है । भीम जब कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहते है; तब कृष्ण वहाँ अवश्य ही आयेंगे और वे किसी भी प्रकार रुक्मिणी का अपने साथ विवाह करेंगे । यदि आपने कृष्ण से युद्ध भी किया तब भी विजय पाना कठिन है । आपको अपने योद्धा कटाकर खाली हाथ वापस लौटना पड़ेगा, जो बडे अपमान की बात होगी । इसलिए इस विवाह की बात को इतने ही में समाप्त कर दो. आगे मत बढाओ । टीका फेर दो और भाट से कह दो कि हमारे घर में वृद्धजनों को यह विवाह स्वीकार नही है ।

भावज की बात सुनकर शिशुपाल खीझकर कहने लगा—वाह भावजजी, आपने अच्छी सम्मति दी ! आप कितनी ही बुद्धिमती क्यो न हो परन्तु आखिर है तो स्त्री ही !

स्त्रियों में कायरता और अदूरदर्शिता स्वभावत. होती है । हम आपका सम्मान बढ़ाने के लिये कार्य मे आपसे सम्मति लिया करते है परन्तु कभी-कभी तो आप ऐसी भद्दी बात कह डालती हैं कि कुछ कहा नही जाता । हम क्षत्रिय है । चन्देरी के राजा हैं । ससार में हमारी वीरता प्रसिद्ध है । यदि हम आया हुआ और स्वीकार किया हुआ टीका लौटा दे तो इसमे हमारी प्रतिष्ठा बढेगी या हमारी नाक कटेगी ? लोग हमे क्या कहेगे ? रुक्म ने हमारा पक्ष लेकर बाप से विरोध बांधा और अब हम टीका वापस करके अपने कुल को कलंक लगाये ? आपको तो यह विचार कर हर्षित होना चाहिये था कि इस प्रकार की चढा-बढी मे हमारे देवर का मान रहा है ! इस विवाह को करने के लिए हमारा उत्साह बढाना चाहिये था, लेकिन आपने तो ऐसी अपमान भरी सम्मति दी कि जैसी सम्मति न तो कोई वीर-नारी दे ही सकती है, न कोई क्षत्रिय मान ही सकता है ।

भावज—देवरजी आपके सम्मान अपमान का ध्यान मुझे भी है । मै भी यही चाहती हूँ कि आपका सम्मान बढे, किसी भी समय और कही भी आपका अपमान न हो । मैने जो सम्मति दी है वह भी आपके सम्मान की रक्षा और आपको अपमान से बचाने के लिए ही । आप इस समय टीका फेरने में अपमान मानते हैं परन्तु यह अपमान बरात लेकर विवाह करने के लिये जाने पर भी बिना विवाह किये लौटने के अपमान की अपेक्षा कुछ नही है । इसलिये मै आपसे फिर

यही कहती हूँ कि बात आगे मत बढने दो, इतने ही में समेट लो। अभी टीका ही फेरना पडता है लेकिन फिर मौर बांधे हुए फिरोगे। कृष्ण आपके भाई हैं, ५६ कोटि यादवो के स्वामी है, इसलिए उनसे लड़ाई का अवसर न आने देना ही अच्छा है।

शिशुपाल—मै आपकी यह सम्मति कदापि नही मान सकता। कृष्ण या उसके ५६ कोटि यादवों से मै भय नही खाता हूँ। यदि वह वहाँ आया भी तो यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात होगी। मै उसे उसकी सेना सहित बात-की-बात में नष्ट कर डालूगा और रुक्मिणी के साथ ही विजय लेकर घर आऊँगा। ऐसे सुअवसर को—जबकि शत्रु स्वय ही मेरी वीरताग्नि में भस्म होने के लिये आने वाला हो—मै कदापि नही खो सकता।

भावज—विजय-पराजय का किसको पता है कि किसकी हो, परन्तु निष्कारण युद्ध छेडकर मनुष्यों का नाश करना बुद्धिमानी नही है। आपकी बातो से मैं समझ गई कि आप टीका फेर देना अनुचित समझते है। ठीक है, आप टीका वापस मत लौटाइये, मगर एक बात मेरी भी मान लीजिये।

शिशुपाल—क्या ?

भावज—आप यह विवाह-तिथि टाल दीजिये। मैने यहाँ के और कुन्डिनपुर के ज्योतिषियो के मत सुन लिये हैं। इसलिये मै आपसे यह लग्न-तिथि टाल देने का अनुरोध करती हूँ। आप भाट से कह दीजिए कि यह विवाह-तिथि हमारे

अनुकूल नही पडती है, इसलिए हम दूसरी अमुक तिथि को विवाह करेंगे ?

शिशुपाल—निष्कारण विवाह-तिथि वदलने का कैसे कहूँ ? विवाह तो तभी रोका जा सकता है जब कोई वड़ा कारण हो।

भौजाई—आप यह कारण वता दीजिये कि इस तिथि पर हमें एक दूसरी कन्या से विवाह करना है।

शिशुपाल—दूसरी कन्या कौन-सी है, जिसके लिये यह कारण वता दू ? तथा यह कारण वताकर विवाह रोक दिया और फिर दूसरी कन्या से विवाह न किया तो इसमें मेरा कैसा अपमान होगा ?

भौजाई—अपमान तो तव होगा, जव वताया हुआ कारण झूठ ठहरे। मैं आपका दूसरी कन्या से इस तिथि को विवाह करा दूंगी; फिर तो अपमान की कोई वात नहीं रहेगी !

शिशुपाल—आप किस कन्या से मेरा विवाह करायेगी?

भावज—मेरी छोटी वहिन अविवाहिता है। मैं अभी अपने पिता के यहाँ जाकर, उसके विवाह का टीका आपके यहाँ भिजवा दूगी और रुक्मिणी से विवाह करने की जो तिथि नियत हुई है, उस तिथि पर आपका मेरी वहिन के साथ विवाह करा दूगी। मेरी वहिन से विवाह करने के पश्चात आप रुक्मिणी को भी विवाह लाइयेगा; मुझे कोई आपत्ति नही है, परन्तु यह विवाह–तिथि टाल दीजिये।

भावज की वात सुनकर, शिशुपाल ठहाका मारकर

हँस पड़ा और कहने लगा—आप रुक्मिणी से विवाह करने का विरोध क्यो करती है, इसका भेद अब खुला है। अब मुझे मालूम हो गया कि आप स्वार्थ के वश होकर ही टीका वापस लौटाने का कह रही है। स्वार्थी मनुष्य दूसरे के हिताहित या अपमान-सम्मान को नही देखता। वह तो अपना स्वार्थ सिद्ध करने ही में रहता है। यही बात आपसे भी मालूम हुई। अपनी वहिन का विवाह मेरे साथ जुटाने के लिए ही आप इतनी कोशिश कर रही हैं और इस बात का विचार नही करती हैं कि हमारे देवर की कुन्डिनपुर में जो प्रशसा हुई है, टीका वापस कर देने पर वह प्रशसा रहेगी या मिट्टी में मिल जायेगी। लोग स्त्रियों को कपट की खान वताते है, जो ठीक है। यदि आपको अपनी वहिन का विवाह मेरे साथ ही कराना था तो आप मेरे से स्पष्ट कह देतीं। मै कुन्डिनपुर से लौटकर आपकी वहिन से भी विवाह कर लेता! इसके लिए इस प्रकार कपट से काम लेने की क्या जरूरत थी! लेकिन ऐसा करना स्त्रियों का स्वभाव ही है। आपने तो अपने कपटी स्वभाव का परिचय दिया, परन्तु हम तो उदार ही रहेंगे। इसलिए हम आपको विश्वास दिलाते हैं, कि कुन्डिनपुर से लौटकर आपकी वहिन को भी विवाह लायेगे। आप धैर्य धरो, घवराओ मत।

भावज—देवरजी, आपका यह समझना भ्रम है। आप यदि मेरी वहिन के साथ विवाह न करेंगे तो वह कुवाँरी न रह जायेगी। मैंने टीका लौटाने का इसलिए कहा है कि

इस टीका भेजने मे भीम सहमत नही है और मुझे विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि रुक्मिणी भी आपकी पत्नी नही बनना चाहती। वह कृष्ण को ही चाहती है। कन्या के न चाहने पर भी उसके साथ विवाह करने जाना वीरता नहीं है और ऐसा करने मे अपमान का भी भय है। रुक्मिणी कृष्ण को चाहती है। इसलिए विवाह के अवसर पर कृष्ण अवश्य आयेगे। आप कुछ भी कहे, परन्तु कृष्ण का पराक्रम मै सुन चुकी हूँ। मेरा विश्वास है कि आप उनके सामने नही ठहर सकते। कायरों की तरह भाग जायेगे। ऐसा होने पर आपका भी अपमान होगा और आपकी कुबुद्धि के परिणाम-स्वरूप हजारो स्त्रियो को अपना सुख-सुहाग खोकर विधवा बनना पड़ेगा। इसलिए मै आपको रोकती हूँ। अपनी बहिन से विवाह करने का तो इसलिए कहा है कि जिसमे विवाह-तिथि टालने के विषय में कोई कुछ न कह सके। मेरी बहिन के विवाह के लिए ही मैने यह सब कहा है, ऐसा समझना भूल है।

भावज की बात सुनकर शिशुपाल रुष्ट होकर कहने लगा—भावज आप क्षत्रियकन्या और वीर पत्नी हैं? बार-बार शत्रु की प्रशसा करने में आपको लज्जा नही होती? आप हमें कृष्ण का भय क्यो दिखाती है? मै उसको और उसके ५६ कोटि यादवो को एक क्षण मे ही बांध सकता हूँ। मैं आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था और समझता था कि भावजजी मुझे क्षत्रियोचित शिक्षा ही देगी, परन्तु आज मुझे इसके विपरीत अनुभव हुआ है।

भावज—देवरजी, मैंने अपनी ओर से तो उचित बात ही कही है, यह बात दूसरी है कि मेरी उचित बात भी आपको रुचिकर प्रतीत नही हुई । आपको मेरी बात अभी तो बुरी मालूम हुई है, परन्तु आगे चलकर आप स्वंय अनुभव करेंगे कि भावज ने हम से हित की ही बात कही थी । मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुकी और अब भी कहती हूँ, रुक्मिणी आपको नही चाहती, इसलिए रुक्मिणी के विवाह का टीका स्वीकार न करें । इस पर भी यदि आप मेरी बात न माने तो आपकी इच्छा; परन्तु मै तो इस विवाह से सहमत नही हूँ ।

भौजाई की बात के उत्तर मे शिशुपाल यह कहता हुआ भावज के महल से चला गया कि आप सहमत नही है तो न सही, हम पुरुष, स्त्रियों की बातों मे नही लग सकते । भावज ने भी शिशुपाल के उत्तर पर से समझ लिया कि इनके बुरे दिन आये हैं; इसीसे इन्हे अच्छी बात नही रुचती और ये रुक्मिणी रूपी दीपक पर पतग की तरह जल मरने को तैयार हुए है ।

४ : रुक्मिणी की प्रतिज्ञा

बंधनानि खलु सन्तिबहूनि प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत् ।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोषे ।।

अर्थात्—ससार में अनेक प्रकार के बन्धन विद्यमान हैं लेकिन प्रेम रूपी रस्सी का बन्धन सबसे बढ़कर है । काठ को भेदने में समर्थ भ्रमर प्रेम की रस्सी से बधकर कमल के मुख मे बद होकर प्राण दे देता है, परन्तु उसे छेदकर निकलने की चेष्टा नही करता ।

संसार में सच्चे प्रेमी वहुत कम है । वास्तव में प्रेमी बनना है भी कठिन । प्रेमी अपने प्रेमपात्र के लिये अपना सर्वस्व—यहाँ तक कि अपने प्राण को भी तृणवत् समझता है । ईश्वर और धर्म से प्रेम करनेवालों के तो ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेगे परन्तु साधारण व्यक्ति से और वह भी स्वार्थ से सना हुआ प्रेम करनेवालों के भी ऐसे कई उदाहरण मिलेगे जिनमें प्रेमी ने अपने प्रेमास्पद पर प्राण तक न्यौछावर कर दिये ।

यद्यपि स्वार्थ से सने हुए प्रेम के नाम पर कष्ट सहन का वास्तविक कारण प्रेम है या स्वार्थ, यह तो कहना कठिन है; लेकिन स्वार्थपूर्ण प्रेम पर से यह तो जाना जा सकता है

कि जब स्वार्थपूर्ण प्रेम के लिये भी इतना त्याग और कष्ट-सहन की कठिन तपस्या की जाती है तो नि स्वार्थ प्रेम के लिये कितने त्याग और कष्ट सहन की आवश्यकता है। वास्तव मे प्रेम के मार्ग को वही अपना सकता है जो कष्ट को भी सुख मानने की क्षमता रखता हो। जिसमे ऐसी क्षमता नही है; उसका प्रेम भी तभी तक रहेगा जब तक कि सामने कष्ट नही है।

मोक्ष की दृष्टि से तो वह प्रेम हेय है, जिसमे सांसारिक स्वार्थ की किंचित् भी बू है। सासारिक स्वार्थपूर्ण प्रेम मोक्ष के लिए निरर्थक है। मोक्ष के लिये तो नि:स्वार्थ प्रेम की आवश्यकता है और नि स्वार्थ प्रेम ही ईश्वरीय नियम भी है; लेकिन नैतिक दृष्टि से स्वार्थपूर्ण प्रेम के भी दो भेद हो जाते है—एक पवित्र और दूसरा अपवित्र। अनन्य और विषय सुख की लालसा सें रहित प्रेम पवित्र माना जाता है और इससे विपरीत प्रेम अपवित्र माना जाता है। अपवित्र प्रेम नैतिक दृष्टि से भी हेय है।

रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम था और अनन्य प्रेम था। यह तो कहा नही जा सकता कि कृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम विषयसुख की लालसा से था या इस लालसा से रहित था, परन्तु यदि विषयसुख की लालसा से ही रुक्मिणी को कृष्ण से प्रेम होता तो इसकी पूर्ति तो शिशुपाल से हो ही रही थी। बल्कि कृष्ण के अनेक रानियां थी, इसलिये उसे कृष्ण द्वारा उतना विषयजन्य सुख नही मिल सकता था जितना

शिशुपाल द्वारा मिल सकता था। इसलिये उसे कृष्ण के प्रेम में कष्ट उठाने की आवश्यकता न थी। कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के अनन्य प्रेम और रुक्मिणी के कष्ट सहन को देखते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि उसका कृष्ण-प्रेम विषयसुख की लालसा से ही था। यदि रुक्मिणी का प्रेम केवल विषयसुख की लालसा से ही होता तो आज उसकी कथा भी न गाई जाती। क्योंकि इस प्रकार की लालसा अनैतिकता में पहुँचा देती है और अनैतिकता मे पहुंचे हुए व्यक्ति के चरित्र को कोई भी भला आदमी आदर नही दे सकता। रुक्मिणी का प्रेम पवित्र माना जाता है, इसलिए भी यह नही कहा जा सकता कि उसका प्रेम विषयसुख की लालसा से ही हो। संभव है कि सांसारिक होने के कारण रुक्मिणी का प्रेम किंचित् विषयसुख की भावना लिए हुए भी हो, परन्तु इस भावना का प्राधान्य न होने के कारण उसका प्रेम पवित्र ही कहा जा सकता है और इस बात को उसका अनन्य कृष्ण-प्रेम और भी पुष्ट बना देता है।

रुक्मिणी ने कृष्ण की प्रशंसा पहले से ही सुन रखी थी। उसके हृदय में कृष्ण की प्रशंसा सुनकर ही उनके प्रति प्रेम का अंकुर जम चुका था, परन्तु सहायता के अभाव से उस प्रेमांकुर की वृद्धि नहीं हुई थी। रुक्मिणी के विवाह को लेकर भीम और रुक्म में जो मतभेद हो गया था, उस मतभेद ने रुक्मिणी के प्रेमांकुर में जल सिंचन किया।

रुक्मिणी को पिता और भाई के मतभेद का समा-

चार मालूम हुआ। वह अपने भाई की उद्दण्डता, अदूरदर्शिता और उच्छृङ्खलता को जानती थी और यह भी जानती थी कि मेरी माता पर भी भाई का प्रभाव है। अपने पिता की न्यायप्रियता, दूरदर्शिता और अनुभववृद्धता पर उसे विश्वास था। साथ ही उसने कृष्ण की प्रशसा और शिशुपाल की निन्दा भी सुन रखी थी। उसमे शिशुपाल के प्रति किंचित् भी प्रेम न था, लेकिन कृष्ण-प्रेम का अकुर उसके हृदय के एक कोने मे छिपा हुआ था। पिता द्वारा की गई कृष्ण की प्रशसा और पिता द्वारा किये गये विवाह प्रस्ताव को सुनकर रुक्मिणी के हृदय का वह प्रेमाकुर कुछ लहलहा उठा। परन्तु साथ ही उसे यह सुनकर चिन्ता भी हुई कि मेरे विवाह का भार भाई पर छोडकर पिता तटस्थ हो गये है और मेरे भाई की इच्छा मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करने की है तथा माता भी भाई की इच्छा से सहमत है।

भाई की इच्छा को दृष्टि मे रख कर रुक्मिणी विचारने लगी कि भाई पिता के प्रस्ताव की तो अवहेलना कर रहा है परन्तु क्या मुझसे पूछे बिना ही—मेरी इच्छा जाने बिना ही—मेरा विवाह शिशुपाल से कर देगा? क्या भाई का यह कार्य न्यायसगत होगा? जिसको चिरसंगी बनाना है, उस कन्या की इच्छा भी न जानी जायेगी! क्या मुझको मूक पशु की तरह चुपचाप अनचाहते पुरुष के साथ चली जाना पड़ेगा। क्या मुझे बलात् अपना जीवन अनिच्छित पुरुष को सौपना पड़ेगा। मुझे अपने जीवनसाथी के

विषय में विचार करने का किंचित् भी अधिकार नही है ! मनुष्य होने के नाते मुझे अपना जीवनसाथी, अपना हृदयेश्वर चुनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है, परन्तु क्या भाई मेरे इस अधिकार पर पदाघात कर डालेगा ? लेकिन यदि भाई ने यह अन्याय कर ही डाला तो मैं इस अन्याय का प्रतिकार किस तरह करूगी ! मैं अपने अधिकार की रक्षा और उसका उपयोग कैसे कर पाऊंगी ! क्या मुझे भाई के विरुद्ध विद्रोह मचाना पडेगा ! नही-नही; ऐसा करने की आवश्यकता ही क्यो पड़ेगी ! कदाचित् भाई मेरी उपेक्षा भी कर दे, परन्तु मुझे अपनी चिरसंगनी बनाने की इच्छा रखने वाला तो मेरी इच्छा जानेगा या नही ! वह तो विचारेगा कि जिसे मैं अपनी चिरसगनी वनाना चाहता हूँ, वह भी मेरी चिरसगनी वनना चाहती है या नही ! क्या वह भी मेरी उपेक्षा कर देगा ! क्या कन्या का लेन-देन मूक पशुओं की ही तरह होगा । कन्या की इच्छा की उपेक्षा कोई भी न करेगा ! पुरुष, हम अवलाओ के साथ ऐसा अन्याय कर डालेगे ! परन्तु कदाचित् मेरे पर ऐसा अन्याय होने लगा तो मैं अपने को ऐसे अन्याय से किस प्रकार बचा सकूगी !

रुक्मिणी अपने मन में इसी प्रकार के विचार किया करती थी। उसे इस बात का किंचित् भी पता न था कि मेरे विवाह का टीका शिशुपाल के यहाँ भेज दिया गया है ! रुक्म ने टीका भेजा भी था चुपचाप, किसी को खबर भी न होने दी थी। उसे भय था कि कही पिता की असहमति

के कारण शिशुपाल टीका अस्वीकार न करदे, अन्यथा यहाँ के लोगो मे बहुत अपमान सहना होगा और पिता की सम्मति की उपेक्षा करने के कारण मेरी निन्दा भी होगी। इस भय से ही उसने टीका चुपचाप भेजा था, जिसमे यदि शिशुपाल अस्वीकार भी करदे तो यहाँ किसी को—उस अस्वीकृति का—पता न हो और यदि स्वीकार कर लिया तो फिर छिपाने की आवश्यकता ही क्या है।

रुक्मिणी अभी अनुमान मे थी कि भाई पिता की इच्छा के विरुद्ध और मेरी इच्छा जाने बिना मेरा विवाह शिशुपाल के साथ तय न करेगा ! परन्तु चन्देरी से सरसत भाट के लौट आने पर उसका भ्रम मिट गया। वह जान गई कि भाई मेरी इच्छा की अवहेलना करके स्वेच्छाचार से काम लेना चाहता है।

उधर चन्देरी मे शिशुपाल को टीका चढ़ाकर और उससे विवाह-तिथि स्वीकार कराकर सरसत भाट ने शिशु-पाल से विदा मांगी। शिशुपाल ने सरसत को सम्मान—सत्कार—पूर्वक विदा किया। चन्देरी से विदा होकर सरसत कुन्डिनपुर आया। उसने रुक्म को बधाई देकर उससे शिशु-पाल द्वारा टीका और विवाह-तिथि स्वीकार कर ली जाने का समाचार कहा। रुक्म को टीका चढ जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सरसत को पुरस्कार देकर विदा किया और मन्त्री को विवाह की तैयारी करने की आज्ञा दी। उसने मन्त्री से कहा कि नगर को सजाओ, खाने-पीने एवं लेने-

देने की वस्तुओं और ठहरने के स्थान का प्रबन्ध करो तथा साथ-ही-साथ ऐसा प्रबन्ध भी करो कि आवश्यकता पड़ने पर युद्ध भी किया जा सके।

रुक्म की आज्ञानुसार मन्त्री ने विवाह-विषयक प्रबन्ध शुरू किया। बात-की-बात में सारे नगर मे यह समाचार फैल गया कि रुक्मिणी का विवाह चन्देरीराज शिशुपाल के साथ होना निश्चित हुआ है और अमुक तिथि को विवाह होगा। जनता इस विषय पर भिन्न-भिन्न सम्मति बनाने लगी। कोई इस विवाह को अच्छा बताया था और कोई बुरा। रुक्मिणी की सखियो ने भी यह समाचार सुना। वे रुक्मिणी को यह शुभ समाचार सुनाकर बधाई देने के लिए रुक्मिणी के पास आईं। वे रुक्मिणी से कहने लगी—सखी, हम सब आपको बधाई देने आई हैं। अब तो हमारा आपका साथ थोड़े ही दिनों का है। थोड़े दिन बाद तो आप हमसे बिछुड़ जायेंगी। फिर तो शायद हमारी याद भी न रहे।

सखियों की बात सुनकर रुक्मिणी उनसे कहने लगी—सखियो, आज निष्कारण तुम इस प्रकार की बातें क्यों कर रही हो ? मैं तुम्हारा साथ छोड़कर कहाँ जा रही हूँ, जो तुम्हें विस्मृत हो जाऊंगी !

सखियां—लो, सारे शहर मे तो आपके विवाह की तैयारी हो रही है और आपको पता भी नही है ! बहिन जानबूझ कर इतनी भोली क्यो बन रही हो ?

रुक्मिणी—मैं सत्य कहती हूँ कि मुझे इस सम्बन्ध में

कुछ भी मालूम नही है । मैने तो यह इतनी बात भी तुम्ही से सुनी है !

सखियां—अच्छा तो हम आपको सुनाती हैं, सुनिये ! आपका विवाह चन्देरीराज शिशुपाल के साथ ठहरा है । विवाह का टीका भी चढ़ाया जा चुका है और माघ कृष्ण ८ को विवाह होगा । इसी से हम कहती हैं कि कुछ दिन बाद जब आप चन्देरी की रानी बन जायेंगी तब आपको हमारी याद क्यों रहेगी ! फिर तो किसी दूसरे की ही याद रहेगी और वह भी सहचारिणी की ही नही, किन्तु सह-चारी की ।

रुक्मिणी की सखियां विचारती थी कि रुक्मिणी शिशुपाल से अपना विवाह होने की बात सुनकर प्रसन्न होगी, हमें पुरस्कार देगी, परन्तु उन्हे कुछ ही देर में मालूम हुआ कि हम भ्रम में थी । उन्होंने देखा कि विवाह का समा-चार सुनकर रुक्मिणी की स्वाभाविक प्रसन्नता भी चिंता मे परिणत हो गई । वे ऐसा होने के ठीक कारण का अनुमान भी न कर सकी और रुक्मिणी से कहने लगी—सखी, आप उदास क्यों हो गई है ? क्या आपको यह विचार हो आया कि मुझे चिरपरिचित गृह और सखी-सहेलियों को छोड़कर जाना होगा ! परन्तु सखी, यह तो प्रसन्नता की बात है, इसमें खेद का कोई कारण नही है । यह तो ससार का बहुत साधारण नियम है । कन्याओं का गौरव भी ससुराल में ही है । लता वृक्ष के साथ ही शोभा पाती है, इसी प्रकार स्त्री

की शोभा भी पति के साथ रहने से ही है।

रुक्मिणी—सखियो, आप वास्तविक बात नही समझ सकी हैं। मैं इसलिए चिन्तित नही हूँ, किन्तु इसलिए चिन्तित हूँ कि क्या मुझे ऐसे व्यक्ति को अपना जीवन-साथी बनाना पड़ेगा, जिसके लिए मेरे हृदय मे किंचित् भी स्थान नही है। क्या इस विषय में भाई को मेरी इच्छाए जानने की आवश्यकता न थी ? क्या कन्याओं का जीवन इतना निकृष्ट है कि उन्हे चाहे जिसके साथ कर दिया जाये ! मैं इन्ही समस्याओं में उलझ गई हूँ। इन समस्याओ से सुलझने का मुझे कोई मार्ग नही दिखता। तुम सब थोडी देर के लिए मुझे अकेली छोड़ दो जिससे मैं इन समस्याओं के विषय में विचार कर सकू।

रुक्मिणी की इच्छानुसार रुक्मिणी की सखियां वहाँ से चली गईं। रुक्मिणी अकेली रह गई। वह विचारने लगी कि—मेरी इच्छा जाने बिना ही भाई ने मेरा विवाह शिशुपाल के साथ ठहरा कर मेरे साथ अन्याय किया है। भाई को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए मेरी इच्छा की हत्या न करनी चाहिए थी। कन्या की इच्छा जाने बिना ही उसका जीवन-साथी चुनने का अधिकार किसी को नही हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह जिसे भी चाहे अपना जीवन-साथी बनाये। लेकिन भाई के कार्य से जान पड़ता है कि पुरुषों ने इस विषय मे अन्याय मचा रखा है। उन्होने हम कन्याओं की इस विषयक स्वतन्त्रता छीन कर

अपने अधिकारों को विस्तृत बना लिया है। वे अपनी जीवन-साथिनी बनाने में स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता से काम लेते हैं, बलात् किसी को अपनी पत्नी बना लेते हैं, उसकी इच्छा की किंचित् भी अपेक्षा नही करते। यह उनका डाकूपन है। मै समझती थी कि भाई अपनी उदण्डता से कदाचित मेरी इच्छा की अवहेलना भी कर डालेगा तब भी जिसे मेरा जीवनसाथी बनाया जा रहा है वह शिशुपाल तो मेरी इच्छा जानने के पश्चात् ही विवाह स्वीकार करेगा! परन्तु मेरा यह समझना केवल भ्रम निकला। भाई और शिशुपाल दोनों एक ही श्रेणी के निकले। इन दोनों ने तो मुझ पर अत्याचार करना चाहा है, मेरे अधिकार को पददलित करना चाहा है, परन्तु क्या मुझे चुपचाप अपने पर अत्याचार होने देना चाहिये? क्या मुझे अपने अधिकार की रक्षा का प्रयत्न न करना चाहिए? यदि मैंने इस अत्याचार का विरोध न किया तो मेरी अनेक बहिनों को भी इसी प्रकार के अत्याचार का शिकार होना पड़ेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि मैं अपना प्रेमपात्र किसे बनाऊँगी! भाई मेरे जिस हृदय पर शिशुपाल का अधिकार कराना चाहता है वह हृदय शिशुपाल से बचा कर किसे सौपूगी! कृष्ण के प्रति मेरे हृदय में प्रेम का छोटा-सा अंकुर अवश्य है परन्तु उनके विषय मे भी मैं अधिक कुछ नही जानती। ऐसी दशा मे वह प्रेमांकुर बढने भी कैसे दू!

रुक्मिणी इस प्रकार के विचारों मे पड़ी हुई थी। वह

अपने विषय मे किसी निश्चय पर न पहुँच सकी। इसी बीच में नारद ऋषि आ गये। नारद की कृपा से उसके हृदय का कृष्ण—प्रेमांकुर विशाल हो गया और उसने भविष्य के विषय मे भी निश्चय कर लिया।

नारदजी कृष्ण के लिए एक योग्य पटरानी की खोज में लगे हुए थे। वे कृष्ण की पटरानी सत्यभामा के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। इसका कारण था सत्यभामा का अभिमान। एक दिन सत्यभामा दर्पण में अपना मुख देख रही थी, इतने ही में वहाँ नारदजी पहुँच गये। सत्यभामा की पीठ की ओर नारदजी थे, इस कारण नारदजी का प्रतिबिम्ब भी उसी दर्पण में पड़ा जिसमे सत्यभामा अपना मुख देख रही थी। दर्पण में अपने मुख के पास नारद का मुख देखकर सत्यभामा रुष्ट हो कहने लगी—हैं? मेरे मुख-चन्द्र के पास यह राहु-सा किसका मुख है! सत्यभामा की यह बात सुनते ही नारद पीछे पाँव लौट पड़े। वे विचारने लगे कि सत्यभामा को अपने रूप का बहुत गर्व है। वह अपने मुख को चन्द्र के समान और दूसरे के मुख को राहु के समान मानती है। हरि की पटरानी को ऐसा गर्व तो न चाहिये! कृष्ण तो इतने निरभिमानी हैं और उनकी पटरानी ऐसी अभिमानिनी हो, यह ठीक नहीं। कृष्ण के तो ऐसी पटरानी होनी चाहिए जिसमें अभिमान न हो। मैं कृष्ण के वास्ते ऐसी ही पटरानी की खोज करूँगा जो कृष्ण के समान ही निरभिमानिनी हो।

कृष्ण के लिए पटरानी की खोज मे नारदजी इधर-

उधर भ्रमण करने लगे, परन्तु उनकी दृष्टि मे ऐसी कोई कन्या नही आई जो कृष्ण की पटरानी बनने योग्य हो। भ्रमण करते हुए वे विदर्भ देश मे आये। वहाँ के कृषकों की कन्याओ को देखकर नारदजी विचारने लगे कि इस देश की कन्याएँ सुन्दरी होती हैं। यदि यहाँ के राजा के कोई कुँवारी कन्या हो और वह भी सुन्दरी हो तब तो मेरा भ्रमण सफल हो जाये। पता लगाने पर नारदजी को मालूम हो गया कि यहाँ के राजा भीम की कन्या रुक्मिणी अप्रतिम सुदरी है। साथ ही उन्हे रुक्मिणी के विवाह विषयक भीम और रुक्म का मत-भेद भी मालूम हो गया। वे कुन्डिनपुर मे राजा भीम के यहाँ आये। भीम ने नारद को नमस्कार करके उन्हे योग्य आसन पर वैठाया। नारद वैठे थे और भीम से कुशल-प्रश्न कर रहे थे, इतने ही मे वहाँ रुक्म भी आ गया। नारद ने रुक्म को देखकर यह तो समझ लिया कि यह भीम का पुत्र रुक्म है परन्तु आगे वात चलाने के उद्देश्य से उन्होने रुक्म की ओर सकेत करते हुए भीम से पूछा—राजन् ये राजकुमार है ?

भीम—हाँ महाराज, सव आपकी कृपा का प्रताप है।

नारद—ये अकेले ही है या इनके और भाई वहिन भी हैं ?

भीम—चार पुत्र तथा एक कन्या और है, वस ये ही छ सन्तान है।

नारद—प्रसन्नता की वात है। कन्या का विवाह तो हो गया होगा ?

भीम—नही महाराज, अब तक तो विवाह नही हुआ है; कुँवारी ही है।

नारद और भीम की वातचीत सुनकर रुक्म ने विचार किया कि कहीं बावाजी वहिन के विवाह का कोई तीसरा प्रस्ताव करके इस विषय की अधिक बात न चलाये। इसलिये इनकी बातचीत यही समाप्त कर देनी चाहिये। इस प्रकार विचार कर रुक्म ने नारद से कहा—वहिन के विवाह का टीका तो चढाया जा चुका है और अमुक तिथि को विवाह भी हो जायेगा।

रुक्म की बात सुनकर नारदजी उसका उद्देश्य समझ गये। वे अपने मन में कहने लगे कि बच्चा तुम नारद-लीला नही जानते, इसी से नारद को भुलावा दे रहे हो। उन्होंने रुक्म से कहा—हाँ, विवाह तय हो चुका है। किसके साथ तय हुआ है?

रुक्म—चन्देरीराज महाराज शिशुपाल के साथ।

नारद—शिशुपाल है भी प्रतापी राजा!

नारदजी ने प्रकट में तो रुक्म से यों कहा, परन्तु अपने मन में कहने लगे कि—मूर्ख, माता-पिता और रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध तूने यह विवाह ठहराया तो है, परन्तु नारद के भी हथकण्डे देख। तेरे मन की मन में ही न रख दी और तुझे रुक्मिणी तथा पिता की इच्छा को पददलित करने फल न भुगताया तो मैं नारद ही क्या!

नारद ने भीम से कहा—अच्छा राजन्, जाऊँ जरा रन-

वास मे भी दर्शन दे आऊँ ।

भीम—हाँ महाराज, पधारिये । यह तो बडी प्रसन्नता की वात है ।

नारदजी भीम के पास से विदा होकर रनवास में आये। राजा भीम की एक वहिन थी, जो उन दिनो भीम के यहाँ ही रहती थी। रुक्मिणी को समय-समय पर वही कृष्ण की प्रशसा सुनाया करती थी । उसके द्वारा कृष्ण की प्रशंसा सुनने से ही रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण-प्रेम का अंकुर उत्पन्न हुआ था और शिशुपाल के साथ विवाह ठहरने के कारण रुक्मिणी को जो मानसिक व्यथा थी, उसे भी वह जानती थी। उसने सुना कि नारदजी राज-सभा मे आये है, वहाँ इस-इस प्रकार की बाते हुईं और अब वे रनवास मे आ रहे हैं। यह सुनकर भीम की बहिन ने विचार किया कि नारदजी से रुक्मिणी के सम्बन्ध में सब के सन्मुख बात न हो सकेगी और यदि की भी तो दुष्ट रुक्म क्रुद्ध हो जायेगा। इसलिये नारदजी के साथ एकान्त मे ही बातचीत करनी चाहिये । इस प्रकार विचार कर उसने रुक्मिणी को एकान्त स्थान मे बैठा दिया और फिर रुक्मिणी को दर्शन देने के वहाने वह नारदजी को भी उसी स्थान पर ले गई ।

रुक्मिणी ने नारदजी को प्रणाम किया । रुक्मिणी को देखकर नारदजी अपने मन मे कहने लगे कि—यह कन्या कृष्ण की पटरानी वनने योग्य है । मैं इतने दिनों से ऐसी ही कन्या की खोज में था । उन्होंने रुक्मिणी से उसके प्रणाम

के उत्तर मे कहा—हे कृष्णवल्लभा तुम चिरजीवी होओ।

नारदजी से कृष्ण का नाम सुनकर रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण-प्रेम की लहर दौड़ गई। उसका मन उसी प्रकार प्रसन्न हो उठा जिस प्रकार मेघध्वनि सुन कर मोर प्रसन्न होता है। वह विचारने लगी कि मेरा विवाह तो शिशुपाल के साथ ठहरा है, फिर ये ज्ञानी ऋषि कृष्णवल्लभा कहकर आशीर्वाद कैसे दे रहे है ! क्या ये भूल रहे हैं ! बाबा नारद भूलने वाले तो हैं नही, इसलिए इस आशीर्वाद मे अवश्य ही कोई रहस्य है। क्या रहस्य है, यह बात तो इनसे फिर पूछूंगी, पहले इनके द्वारा उनका पूरा परिचय तो जान लू, जिनकी वल्लभा कहकर इन्होने मुझे आशीर्वाद दिया है। मैने अब तक शिशुपाल और कृष्ण दोनों के विषय मे समान रूप से निन्दा प्रशसा सुनी है। इस कारण किसी एक बात पर सहसा विश्वास नही किया जा सकता। इन ऋषि का तो किसी से कुछ स्वार्थ है नही, इसलिए ये सच्ची ही बात कहेंगे।

इस प्रकार विचार कर रुक्मिणी अपनी भुआ से कहने लगी—भुआ, ऋषि ने मुझे जिनकी वल्लभा कहकर आशीर्वाद दिया है, वे श्रीकृष्ण किस देश के किस नगर मे रहते है ? वे किस वश के है ? उनकी अवस्था कितनी है ? उनका रूप सौन्दर्य कैसा है ? वे कैसी ऋद्धि के स्वामी है ? उनका परिवार कैसा है ? उनके माता-पिता कौन है ? उनके सहायक भाई कौन है ? उनकी बहिन कौन है ? और उनका

बल-विक्रम कैसा है ?

भुआ से रुक्मिणी के प्रश्न सुनकर नारदजी विचारने लगे कि रुक्मिणी केवल सुन्दरी ही नही है अपितु बुद्धिमती भी है। पति के विषय मे किन-किन बातो को जानने की आवश्यकता है, उन्हे यह भली प्रकार समझती है।

रुक्मिणी की भुआ नारदजी से कहने लगी—महाराज, रुक्मिणी के प्रश्नो का विस्तृत उत्तर दीजिये। आपने रुक्मिणी को कृष्णवल्लभा तो कह दिया परन्तु कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली बातों से जब तक रुक्मिणी पूरी तरह परिचित न हो जाये, तब तक इसके हृदय को सन्तोष कैसे हो सकता है ! इसलिए आप रुक्मिणी के प्रश्नों का उत्तर देकर इसके हृदय का समाधान करिये।

नारदजी कहने लगे कि कृष्ण के सम्बन्ध मे रुक्मिणी के प्रश्न उचित और न्यायपूर्ण है। जिसके साथ अपनी आयु बितानी है, जिसको अपना जीवन सौपना है उसके विषय मे इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक भी है। रुक्मिणी के प्रश्नो से यह भी स्पष्ट है कि कन्याएँ क्या चाहती हैं और किन बातों से वे अपने को सुखी मानती हैं। मैं रुक्मिणी के प्रत्येक प्रश्न का विवेचन सहित पृथक्-पृथक् उत्तर देता हूँ।

नारदजी कहने लगे कि सबसे पहले रुक्मिणी ने कृष्ण के देश और नगर का विवरण पूछा है। जीवन के सुख-दु:ख पर नगर और देश का भी प्रभाव पड़ता है। यदि आर्य देश

की लड़की अनार्य देश मे दी जाये तो उसे दु.ख होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार देश के कारण होने वाले जल-वायु, खान-पान और रहन-सहन मे सीमातीत तथा अरुचिकर परिवर्तन भी कन्या के लिए दु खदायी हो जाता है। रुक्मिणी ने यह प्रश्न उचित ही किया है, लेकिन आश्चर्य तो यह है कि रुक्मिणी कृष्ण के नगर, देश से अब तक अपरिचित कैसे है! सौराष्ट्र देश तो बहुत प्रसिद्ध देश है। उत्तम देश माना है। सजल और कृषि प्रधान देश है। वहाँ का जल, पवन भी श्रेष्ठ है। ऐसे सौराष्ट्र देश की द्वारका नगरी को कौन नही जानता! आज द्वारका जैसी दूसरी नगरी पृथ्वी पर है ही नही। द्वारका पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्रपुरी सदृश है। सारी नगरी रत्नमयी है। कृष्ण उसी द्वारका नगरी के राजा हैं।

रुक्मिणी का दूसरा प्रश्न यह है कि कृष्ण किस वश के हैं। रुक्मिणी का यह प्रश्न भी योग्य ही है। वश का प्रभाव प्रत्येक बात पर पड़ता है। उच्च वंश का पुरुष दीन-हीन अवस्था मे भी वंश-मर्यादा की रक्षा करता है, अनुचित कार्य नही करता, परन्तु हीन-वंश का व्यक्ति अच्छी दशा में भी अनावश्यक ही अनुचित कार्य करता रहता है। जिसकी पत्नी बनना है, उसके वंश के विषय मे पत्नी को जान ही लेना चाहिये। कृष्ण यदुवंशी हैं। यदुवश श्रेष्ठ वंश माना जाता है। यदुवंशियों का आचरण वैसा ही है जैसा श्रेष्ठ क्षत्रियों का होना चाहिए।

रुक्मिणी ने तीसरा प्रश्न कृष्ण की आयु के विषय मे

किया है। कन्याओं के लिए इस प्रश्न का उत्तर पाना और उचित समाधान होना आवश्यक है। कन्याएँ अपने लिए ऐसा पति कदापि नही चाहती जो बालक या ढली हुई अवस्था का हो। वे तो युवक पति ही चाहती है और यह चाहना है भी स्वाभाविक। लेकिन कृष्ण न तो वृद्ध हैं, न बालक। वे युवतियो के योग्य युवक है। अर्थात् कन्याएँ जैसी अवस्था का पति चाहती हैं कृष्ण उसी अवस्था के है।

रुक्मिणी का चौथा प्रश्न कृष्ण के रूप-सौन्दर्य के विषय मे है। कुरूप पति के मिलने पर स्त्रिया अपने आपको सुखी नही मानती किन्तु दु खी मानती है और ऐसी दशा में पति-पत्नी मे प्रेम न रहना भी स्वाभाविक है। इसलिए रुक्मिणी का यह प्रश्न भी उचित ही है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मै कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा किन शब्दों मे करू ? सक्षिप्त मे यही कहता हूँ कि कृष्ण सौन्दर्य की प्रतिमा ही है। उनके शरीर का रग भी अनुपम है। उनके रूप सौन्दर्य के कारण लोग उन्हें मोहन कहते हैं। शत्रु भी उनके सौन्दर्य से मोहित हो जाता है।

रुक्मिणी अपने पाँचवे प्रश्न द्वारा कृष्ण की ऋद्धि जानना चाहती है। कन्या के लिए इस प्रश्न का समाधान होना भी आवश्यक है। ऋद्धि-हीन—दरिद्री—पति पाने पर कन्या अपने आपको सुखी नही मान सकती ! यह बात दूसरी है कि आगे किसी दूसरे कारण से ऋद्धि-सपन्न पति को भी दरिद्री हो जाना पड़े और उस दशा के लिए तो पति-पत्नी

दोनो की समान जिम्मेदारी है, परन्तु पति रूप स्वीकार करने से पहले तो भावी पति की ऋद्धि के विषय मे जान लेना आवश्यक है । रुक्मिणी के इस प्रश्न का उत्तर क्या दू ! मै पहले ही कह चुका हूँ कि वे जिस नगरी के राजा है, वह नगरी रत्नमयी है । इतना ही नही, वे तीन खण्ड पृथ्वी के भावी-स्वामी है । उनके यहाँ अक्षय कोष भरे हुये है । यदि गुण-ऋद्धि का पूछती होओ तो ससार मे कृष्ण के समान राजनीति का ज्ञाता दूसरा है ही नही । वे छोटे बड़े सभी कार्य मे कुशल हैं ।

रुक्मिणी का छठा प्रश्न यह है कि कृष्ण का परिवार कैसा है ? सांसारिक जीवन के लिये परिवार का होना भी आवश्यक है । परिवार न होने से मनुष्य को समय-असमय असहायावस्था का अनुभव करना पडता है । रुक्मिणी का यह प्रश्न भी उचित ही है । कृष्ण का परिवार जैसा बढा हुआ है वैसा बढा हुआ परिवार संसार मे किसी का है ही नही ! उनके परिवार में ५६ कोटि यादव माने जाते है ।

सातवा प्रश्न कृष्ण के माता-पिता के विषय में है । कन्या को अपने सासू-ससुर के विपय मे भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । सासू-ससुर के होने पर कन्या और उसका पति गृहभार से बहुत कुछ बचा रहता है और सुखपूर्वक जीवन बिताने का सुयोग मिलता है । रुक्मिणी के भावी सासू-ससुर और कृष्ण के माता-पिता के विषय मे तो कहना ही क्या है ! ससार मे वसुदेव-सा पिता, देवकी-सी

माता दूसरी है ही नही ! सत्य का पालन वसुदेव ने जिस प्रकार किया है और पतिव्रतधर्म को देवकी ने जैसा पाला है वैसा कोई दूसरा नही पाल सकता । पति के वचन को पूरा करने के लिये एक छोटा-सा आभूषण देने के लिये भी वहुत-सी स्त्रिया तैयार न होगी, परन्तु देवकी ने अपनी सन्तान भी कस द्वारा मारी जाने के लिए दे दी । इसी प्रकार कई पुरुष थोडी-सी हानि से बचने के लिए या थोडे से क्षणिक सुख की आशा से भी वचन-भग कर डालते हैं परन्तु वसुदेव ने सन्तान की हानि से बचने के लिए भी वचन-भग नही किया । ऐसे श्रेष्ठ माता-पिता कृष्ण के सिवा और किसके हैं ? रुक्मिणी ऐसे ही सासू-ससुर की पुत्रवधू होगी ।

रुक्मिणी ने अपने आठवे प्रश्न मे कृष्ण के भाई का विवरण पूछा है । ससार मे भाई के समान सहायक दूसरा कोई नही होता । यद्यपि कभी-कभी भाई भी घोर शत्रु बन जाता है, फिर भी सकट के समय भाई से जो सहायता मिल सकती है वह सहायता दूसरे से नही मिल सकती । कृष्ण के भाई के विषय में तो कहना ही क्या है । उनके भाई वलदेवजी और भगवान अरिष्टनेमि हैं । ऐसे श्रेष्ठ भाई संसार में और किसी के हैं ही नही ।

रुक्मिणी ने नवमे प्रश्न द्वारा यह जानना चाहा है कि कृष्ण की बहिन कौन है ? पति की वहिन—यानी ननद—अपनी भौजाई के लिये सुखदाई भी होती है और दुखदात्री भी होती है । ननद यदि चाहती है तो भाई-भौजाई और सासू-बहू मे

प्रेम करा देती है और वह चाहती है तो घोर क्लेश भी उत्पन्न कर देती है। साथ ही जिस प्रकार पति के सहायक पति के भाई होते है उसी प्रकार पत्नी की सहायिका ननद होती है। इसलिये ननद के विषय मे कन्या का जानकारी प्राप्त करना उचित है। कृष्ण की बहिन सुभद्रा है जो ससार-प्रसिद्ध वीर अर्जुन की पत्नी है। ऐसी ननद पाकर कौन भौजाई अपने भाग्य की सराहना न करेगी।

रुक्मिणी का अन्तिम प्रश्न कृष्ण के बल-विक्रम के विषय मे है। कोई भी कन्या बल-विक्रमहीन पति की पत्नी नही बनना चाहती। बलवान और विक्रमवान पति पाकर कन्याएं अपने को बहुत सुखी मानती है। उन्हे पति का बल-विक्रम सुनकर प्रसन्नता होती है। कृष्ण के बल-विक्रम के विषय में मै क्या कहूँ! उनका बल-विक्रम प्रसिद्ध ही है। ससार के समस्त लोगों का बल एक ओर हो तव भी उनके वल की समता नही कर सकता। उन्होंने बचपन मे ही कस ऐसे बलवान को मार डाला तो उनके अब के बल-पराक्रम का तो कहना ही क्या!

इस प्रकार नारदजी ने रुक्मिणी के समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया। रुक्मिणी ने अपने प्रश्नों से यह बताया है कि हम कन्याए पति के सम्बन्ध में क्या-क्या चाहती है और नारदजी ने यह व्याख्या कर दी कि रुक्मिणी ने ये प्रश्न किस अभिप्राय से किये है।

नारद के उत्तर सुन-सुनकर रुक्मिणी अपने हृदय में

प्रसन्न होती जा रही थी। उसके हृदय का कृष्ण-प्रेमाकुर वृद्धि पाता जा रहा था! वह विचारती थी कि कृष्ण की कहाँ तो यह प्रशंसा और कहाँ भाई द्वारा की गई निन्दा! कृष्ण के विषय मे पिताजी जो कुछ कहते थे, नारदजी के उत्तरों पर से ज्ञात हुआ कि वह कथन बिलकुल सत्य था।

नारद के उत्तर समाप्त होने पर रुक्मिणी की भुआ रुक्मिणी से कहने लगी—कृष्ण के विषय मे तेरे प्रश्नो का उत्तर नारदजी ने दिया, वह तूने सुना ही है। नारदजी कृष्ण की झूठी प्रशसा कदापि न करेगे, न किसी कन्या को भुलावे मे ही डालेगे। साथ ही इनकी भविष्य विपयक कोई वात मिथ्या भी नही होती। इन्होंने तुझे कृष्णवल्लभा कहा है तो तू अवश्य ही कृष्णवल्लभा होगी। जब तू छोटी थी, तब अतिभुक्त ऋषि ने भी तेरे विपय में यही कहा था कि यह कृष्ण की पत्नी होगी।

भुआ की बात सुनकर रुक्मिणी अपनी प्रसन्नता को रोक भुआ से कहने लगी—भुआ नारदजी तो ऐसा कहते है और आप भी यही कहती है, परन्तु क्या आपको पता नही है कि मेरा विवाह दूसरे के साथ ठहर गया है?

भुआ—हाँ मुझे मालूम है कि भाई भीम के कथन के विरुद्ध रुक्म ने तेरा विवाह शिशुपाल के साथ ठहराया है और तेरी माता भी रुक्म के कहने मे लग गई है, फिर भी तेरी इच्छा के विरुद्ध तेरा विवाह शिशुपाल के साथ कदापि नही हो सकता। यदि कन्या अपने निश्चय पर दृढ रहे तो

ससार की कोई प्रबल-से-प्रबल शक्ति भी उसका निश्चय भंग नही कर सकती । जब तक स्वय तेरी इच्छा न हो तब तक न तो शिशुपाल ही तेरे साथ विवाह कर सकता है, न रुक्म या तेरी माता ही शिशुपाल के साथ तेरा विवाह करने की इच्छा पूरी कर सकती है । यदि तू दृढ इच्छा-शक्ति को अपनावे तो शिशुपाल को यहाँ से अपमानित होकर ही लौटना पड़ेगा और इस प्रकार किसी कन्या को उसकी इच्छा के विरुद्ध या उसकी इच्छा जाने बिना उसके साथ विवाह करने के लिए जाने का दुष्परिणाम भोगना पडेगा ।

नारद—रुक्मिणी तू घबरा मत, धैर्य रख । अभी तू नारद-लीला से भी अपरिचित है और कृष्ण-लीला से भी । कृष्ण को देवो का बल प्राप्त है । वे सब कुछ करने मे समर्थ है ।

नारद और भुआ की बातो से रुक्मिणी के हृदय का कृष्ण-प्रेम दृढ हो गया । वह उस समय कृष्ण-प्रेम को हृदय में ही-न रोक सकी । वह कहने लगी कि जिस प्रकार कल्प-वृक्ष छोड़कर करील का वृक्ष, चिन्तामणि त्याग कर ककर, हाथी छोड़ कर गधा और कामधेनु छोड़ कर भेड़ कोई नही चाहता उसी प्रकार मै भी श्रीकृष्ण को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष की पत्नी नही बन सकती । जिस प्रकार चावल त्याग-कर भूसी लेने की, शीतल मीठा जल त्याग कर खारा पानी पीने की, आम छोड़कर इमली खाने की और हर्ष त्यागकर शोक लेने की मूर्खता, कोई नही करता उसी प्रकार मै भी कृष्ण को न अपनाकर दूसरे पुरुष को अपनाने की मूर्खता नही

कर सकती । मेरी दृष्टि मे कृष्ण यदि केसरी सिह के समान है तो शिशुपाल गीदड के समान है । इसलिए हे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और अग्नि मैं तुम सव को साक्षी करके महर्षि नारद के सन्मुख यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि मेरे लिए केवल कृष्ण ही पति हैं, कृष्ण के सिवा ससार के समस्त पुरुष मेरे पिता और भ्राता के समान है । मै यावज्जीवन अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहूँगी । मै ससार को, यहाँ तक कि अपने प्राणों को भी त्याग सकती हूँ । परन्तु अपनी इस प्रतिज्ञा को कदापि नही त्याग सकती । मेरे पर विपत्तियो का पहाड भी टूट पड़े, ससार मे मेरा जीवन भी भार हो जाये और मुझे अपनी समस्त आयु अविवाहित रहकर ही बिताना पड़े, तव भी मैं कृष्ण के सिवाय दूसरे पुरुष की पत्नी नही वन सकती ।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करती हुई रुक्मिणी का हृदय कृष्ण-प्रेम से उमड़ पड़ा । उसकी आँखो से अश्रुधार वह चली । नारदजी रुक्मिणी के हृदय का अगाध कृष्ण-प्रेम देखकर अपना उद्देश्य पूरा हुआ समझ वहाँ से विदा हो गए और विचारने लगे कि रुक्मिणी के हृदय में तो कृष्ण-प्रेम उत्पन्न किया परन्तु अब कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी का प्रेम उत्पन्न करना चाहिए । तभी कार्य सिद्ध हो सकता है ।

५ : नारद लीला

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति

दृढ़ इच्छाशक्ति वाला मनुष्य जो भी चाहे कर सकता है। उसके समीप कोई कार्य असम्भव है ही नही। साधारण लोग जिस कार्य को असम्भव मानते है, दृढ इच्छाशक्तिवाला उसी कार्य को सभव करके बता देता है! कार्य करने की सच्ची लगन, कार्य करने का साहस, कार्य करने की क्षमता और योग्यता जिसमे है, वह मनुष्य असगभव-से-असम्भव कार्य को भी सम्भव करके बता देता है। जिसमे इन विशेषताओ का अभाव है, उसके लिए तो छोटे से छोटा कार्य असम्भव बन जाता है। तनिक विघ्न-बाधा और कष्टो से भय खाने वाला व्यक्ति किसी कार्य मे सफलता प्राप्त नही कर सकता।

नारद भी दृढ निश्चयी थे। वे एक बार जिस काम को करने की इच्छा कर लेते थे, उस काम को करके ही छोड़ते थे, फिर कितनी ही विघ्न-बाधा क्यो न आये। अपनी विचक्षण बुद्धि के बल से वे कार्य के मार्ग मे आने वाली समस्त बाधाओ को बात-की-बात मे मिटा देते थे और अपना उदेश्य पूरा करते थे। उन्होने कृष्ण के लिए दूसरी पटरानी

खोजने का निश्चय किया तो आखिर यह योग्य कन्या खोज ही ली और इस ओर का मार्ग भी सुगम बना लिया। उन्होंने रुक्मिणी को पूरी तरह कृष्णानुरागिनी बना दी लेकिन नारद का उद्देश्य इतने ही से पूरा नही हुआ। वे तो रुक्मिणी को कृष्ण की पटरानी बनाना चाहते है। यद्यपि रुक्मिणी को कृष्णानुरागिनी बनाकर नारद इस ओर से तो निश्चित हो गये, लेकिन अभी जिनकी पटरानी बनाना है उन कृष्ण की ओर से निश्चिन्तता नही है। जब तक कृष्ण के हृदय में भी रुक्मिणी के प्रति प्रेम न हो और कृष्ण भी रुक्मिणी के साथ विवाह करना स्वीकार न कर ले तब तक नारद का उद्देश्य पूरा नही हो सकता। इसलिए रुक्मिणी को कृष्णानु-रागिनी बनाने के पश्चात नारदजी यह विचारने लगे कि अब कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी के प्रति प्रेम कैसे उत्पन्न किया जाये और इस कार्य को सफलता की अन्तिम सीढी तक कैसे पहुँचाया जाये ?

कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए नारदजी उपाय सोचने लगे। वे विचारने लगे कि यदि मैं रुक्मिणी को कृष्ण के सन्मुख ले जाकर कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करूँ तो यह ठीक नही होगा और कृष्ण स्वय रुक्मिणी को देखने की इच्छा से आ नही सकते। ऐसी दशा मे रुक्मिणी के प्रति कृष्ण मे प्रेम कैसे उत्पन्न किया जाये! इस प्रकार विचारते हुए नारदजी ने अन्त में अपना कार्य सिद्ध करने का उपाय सोच ही लिया।

उन्होंने विचारा कि जो काम रुक्मिणी को कृष्ण के पास ले जाने से हो सकता है, वही काम रुक्मिणी का चित्र ले जाने से भी हो सकता है। इसलिये रुक्मिणी का चित्र कृष्ण को बताकर उनमें रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करना ठीक होगा।

नारदजी चित्रकला मे भी निष्णात थे। उन्होने अपनी कला की सहायता से रुक्मिणी का चित्र बनाया। चित्र भी ऐसा बनाया कि देखने वाला मुग्ध हो जाये। नारदजी रुक्मिणी का नख से शिख तक का चित्र बनाकर और अपने साथ लेकर द्वारका आये। चित्रपट को अपनी बगल मे छिपाये हुए वे कृष्ण की सभा में गये। नारद को देखकर कृष्ण, बलदेव आदि सब लोग खड़े हो गये। सबने नारद को प्रणाम किया। कृष्णजी ने नारद का स्वागत करके उन्हें सत्कार-पूर्वक योग्य आसन पर बैठाया। पहले कुछ देर तक तो सम्मान और कुशलप्रश्न की बाते होती रही परन्तु नारदजी को तो अपने काम की चटपटी लग रही थी ! इसलिए उन्होने कृष्ण से कहा कि थोड़ी देर के लिए आप एकान्त में चलिये, मुझे आपसे कुछ कहना है। नारद की बात मानकर कृष्ण उनके साथ बाते करते हुए एक सुन्दर और एकान्त स्थान मे गये।

एकान्त स्थान पर पहुँचकर कृष्ण ने नारदजी से कहा—हाँ महाराज यह स्थान एकान्त है; यहाँ मेरे और आपके सिवा तीसरा कोई मनुष्य नही है, अब आप जो बात कहना चाहते हैं, वह कहिये।

नारदजी—हाँ अब कहता हूँ, आप सुनिये। इस समय

भरतक्षेत्र मे आपसे अधिक नीतिज्ञ दूसरा नही है। आप नीति-शास्त्र के धुरन्धर विद्वान माने जाते है। इसलिये मैं जो बात कहूँ उसका नीतिपूर्वक उत्तर दे।

कृष्ण—हाँ महाराज, मै अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य ही आपकी बात का उत्तर दूगा।

नारद—यह तो मुझे विश्वास ही है। अव मैं अपनी वात प्रारम्भ करता हूँ। ससार मे पुरुष, स्त्री और नपुंसक ऐसे तीन प्रकार के मनुष्य हैं। नपुसक के विषय में तो मुझे कुछ कहना नही है, जो कुछ कहना है वह पुरुष और स्त्री के विषय मे ही। नीति-अनुसार पुरुष और स्त्री का विवाह-सम्बन्ध होता ही है, लेकिन यदि कोई अविवाहित स्त्री किसी पुरुप-विशेष के साथ अपना विवाह करना चाहती हो परन्तु वह पुरुप उस कन्या के साथ विवाह न करना चाहता हो तो क्या वह कन्या उस पुरुष के साथ वलात् विवाह कर सकती है?

कृष्ण— नही महाराज, ऐसा नही हो सकता। किसी पुरुष के साथ कोई भी स्त्री जवरदस्ती अपना विवाह नही कर सकती।

नारदजी—और यदि कोई पुरुष किसी कन्या के साथ विवाह करना चाहता हो परन्तु वह कन्या उस पुरुष के साथ विवाह न करना चाहती हो तो क्या वह पुरुप उस कन्या के साथ जबरदस्ती विवाह कर सकता है?

कृष्ण—महाराज ऐसा भी नही हो सकता। विवाह तो तभी हो सकता है जव पुरुष और कन्या दोनो ही एक दूसरे

के साथ विवाह करने से सहमत हों ।

नारद—और यदि कोई पुरुष या कोई स्त्री एक दूसरे से विवाह नहीं करना चाहते, फिर भी दोनो के माता-पिता अथवा भाई या दो मे से एक के माता-पिता अथवा भाई को क्या यह अधिकार है कि वे दोनो का विवाह कर दे ?

कृष्ण—माता-पिता अथवा भाई को यह अधिकार कदापि नही है कि वे अपनी सन्तान या अपने भाई बहन का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध करे ।

नारद—और यदि पुरुष तो कन्या को चाहता हो, परन्तु कन्या उस पुरुष को न चाहती हो तो क्या कन्या के माता-पिता अथवा भाई को यह अधिकार है कि वे उस कन्या का विवाह उस पुरुष के साथ कर दे, जिसके साथ वह कन्या विवाह नही करना चाहती है ?

कृष्ण—महाराज विवाह-सम्बन्ध वर और कन्या दोनो ही की रुचि से हो सकता है, किसी एक की रुचि से कदापि नही हो सकता । बल्कि कभी-कभी कन्या की रुचि तो विशेषता भी पा जाती है परन्तु उसकी रुचि के प्रतिकूल कदापि विवाह नही हो सकता, न किसी को कन्या की रुचि की अवहेलना करने का अधिकार ही है ।

नारद—यदि कोई माता-पिता, भाई या कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा रखनेवाला पुरुष कन्या की इच्छा को पददलित करे या करना चाहे तो ?

कृष्ण—दण्डनीय है । ऐसा करने वाले को दण्ड दिया

जा सकता है ?

नारद—दण्ड कौन दे सकता है ?

कृष्ण—राजा ।

नारद—और यदि राजा स्वय ऐसा अन्याय करता हो तो ?

कृष्ण—वह सामर्थ्यवान व्यक्ति जिससे कन्या अपनी सहायता की याचना करे और जो राजा को भी दण्ड दे सकता हो ।

नारद—एक कन्या को एक पुरुष अपनी पत्नी बनाना चाहता है, परन्तु वह कन्या उसकी पत्नी नही बनना चाहती, किन्तु दूसरे ही को अपना पति बनाना चाहती है और जिसे कन्या अपना पति बनाना चाहती है वह पुरुष भी उस कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहता है । लेकिन वह पहला पुरुष जिसे कन्या अपना पति नही बनाना चाहती, कन्या के साथ बलात् विवाह करना चाहता है । ऐसे समय में उस पुरुष को जिसे कन्या अपना पति बनाना चाहती है और जो स्वय भी कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहता है, क्या कर्तव्य है ?

कृष्ण—उस पुरुष का कर्तव्य है कि वह कन्या की इच्छा पर उस अत्याचार करने वाले से कन्या की रक्षा करे और उस कन्या को अपनी पत्नी बनाये ।

नारद—यदि वह पुरुष अपने इस कर्तव्य का पालन न करे तो ?

कृष्ण—कर्तव्यपालन की शक्ति होते हुए भी जो अपने कर्तव्य का पालन नही करता, वह कर्तव्यच्युत पाप का भागी

होता है ।

कृष्ण का यह उत्तर समाप्त होते ही नारदजी ने अपनी बगल में दबा हुआ रुक्मिणी के चित्र का पट कृष्ण के सामने पृथ्वी पर फैला दिया । रुक्मिणी का चित्र देखकर कृष्ण आश्चर्य में पड गये । वे यह निश्चय न कर सके कि यह चित्र किसी मानवी का है या अप्सरा का । उन्हे चित्र की स्त्री के सौन्दर्य पर भी आश्चर्य हो रहा था और चित्रकार की निपुणता पर भी । उन्होने नारदजी से पूछा—महाराज क्या यह चित्र किसी अप्सरा का है ? और क्या इस चित्र को बनाने-वाला चित्रकार कोई देव है ? ऐसी सुन्दर स्त्री और ऐसा कुशल चित्रकार इस मनुष्य-लोक में होना तो कठिन है । इस चित्रलिखित स्त्री ने तो अपने सौन्दर्य से मुझे मुग्ध कर लिया है । इस चित्र को देखकर मुझे अपनी रानिया भी तुच्छ लगने लगी है ।

नारद—हाँ, चित्र बहुत सुन्दर है । जिसका चित्र है, उसकी सुन्दरता और विशेषता तो चित्र मे आ ही कैसे सकती है, परन्तु चित्र को देखने से उसके सम्बन्ध की बहुत-सी बातों का अनुमान अवश्य हो सकता है ।

कृष्ण—महाराज यह चित्र किस का है और किस कुशल चित्रकार ने बनाया है ।

नारद—आप चित्र और चित्र में चित्रित स्त्री की प्रशंसा तो कर रहे है परन्तु पहले यह तो बताये कि इस चित्र की स्त्री मे क्या विशेषता है और किन बातो के दिखाने से

चित्रकार की निपुणता जानी जाती है। आप जब यह बात बता देगे तब मैं भी आपको चित्रकार और चित्र की स्त्री का परिचय करा दूगा।

चित्र को एक बार फिर भली प्रकार देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे—नारदजी मै केवल चित्र का रग देखकर ही चित्रकार की प्रशसा नही कर रहा हूँ, किन्तु उसने चित्र में जो विशेषताए बताई हैं उनकी स्पष्टता के कारण ही मै चित्रकार की प्रशंसा करता हूँ। इसी प्रकार इस चित्र की स्त्री की प्रशसा भी सुन्दरता और शारीरिक रचना से ही कर रहा हूँ। जान पड़ता है कि ससार के समस्त सौन्दर्य को इस एक ही स्त्री ने छीन लिया है। सम्भवत. चन्द्र इस स्त्री के कारण ही आकाश को भाग गया है, क्योकि इसके मुख ने उसकी कान्ति फीकी कर दी है। इसके केशों की वेणी ने मोर-पुच्छ को भी लज्जित कर दिया, इसी कारण मोर लज्जित होकर वन में रहने लगा है। इसकी तिर्छी भौहो ने भँवरियों की शोभा हरण कर ली है, इसीसे भँवरियां मनुष्यो से रुष्ट रहती और मनुष्यो को काट खाती है। अव तक मृग के नेत्र ही अच्छे माने जाते थे और मृग अपने नेत्रो पर गर्व करते थे परन्तु इस सुन्दरी के सुन्दर नेत्रो ने मृगों का गर्व भग कर डाला। इससे खेद पाकर मृग वन मे जाकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। इसकी नाक ने सुए की नाक के पतलेपन को भी जीत लिया, इसी कारण सुए मनुष्यों से दूर वृक्षों पर निवास करने लगे। इसके दातो के सामने अपने को तुच्छ मान कर

दाडिम के दाने छिलको के भीतर छिप गये। इसके ओठो की ललाई के आगे मूगो की ललाई फीकी पड गई इसलिए मूगे समुद्र में जा गिरे। कच्छप की ग्रीवा का सौन्दर्य, इस कामिनी की मनोहारिणी ग्रीवा ने छीन लिया। अपनी गर्दन का सौन्दर्य छिन जाने से दु खित होकर कच्छप जल मे छिप कर रहने लगा। इसकी कोमल वाहों को देखकर माला मुरझा गई। इस मत्स्योदरी का पेट देख कर मछलियाँ पानी में ही रहने लगी। यमुना के भँवर की शोभा इस स्वरूपा की नाभि ने छीन ली, इसलिए क्रोध के मारे यमुना का रग नीला हो गया। इसकी कमर का पतलापन देखकर केहरी मनुष्यो से द्रोह रखने लगा। इसकी जघा ने हाथियों की सूडो को लज्जित कर दिया, इसलिए हाथी धूल उडाने लगे। इसके वर्ण की समता न कर सकने के कारण सोना पृथ्वी के गर्भ मे जा छिपा। मैंने इस चित्र की स्त्री को इन्ही विशेपताओ से सुन्दरी वताया है और चित्रकार ने विशेपताओ को स्पष्ट चित्रित किया है, इसलिए चित्रकार की भी प्रशंसा की है। अव आप यह वतलाये कि सुन्दरी कौन है ? और इसका चित्र वनाने वाला चित्रकार कौन है ?

नारद—आपने इस स्त्री के सौन्दर्य का ठीक ही वर्णन किया है। वास्तव मे यह स्त्री ऐसी ही सुन्दरी है। जहाँ तक सूर्य के प्रकाश की गति है मैं वहाँ तक भ्रमण करता हूँ, परन्तु मुझे ऐसी सुन्दर स्त्री दूसरी कही नही दिखी।

कृष्ण—यह तो मैं भी मानता हूँ, परन्तु यह स्त्री है

कौन ? और चित्र किसने वनाया है ?

नारद—चित्रकार तो आपके सामने बैठा है।

कृष्ण—अच्छा यह चित्र आपने वनाया है ! आप चित्र-कला मे ऐसे निपुण हैं, यह बात तो मुझे आज ही मालूम हुई। वास्तव मे ब्रह्मचारी के लिए ससार का कोई कार्य कठिन नही है। लेकिन यह स्त्री कौन है ?

नारद—यह विदर्भ देश स्थित कुन्डिनपुर के राजा भीम और रानी शिखावती की कन्या है। इसका नाम रुक्मिणी है। यह जैसी सुन्दरी है, वैसी ही गुणागरी भी है।

कृष्ण—यह कुंवारी है या विवाहिता ?

यद्यपि कृष्ण के लिये चित्र से यह जानना कठिन न था कि यह चित्र विवाहिता का है या कुमारी का, फिर भी कृष्ण ने नीति का पालन करने के लिए यह प्रश्न किया। उन्होने विचारा कि चित्र से तो यह कुंवारी जान पड़ती है लेकिन सम्भव है कि इसने किसी को पति वनाने का निश्चय कर लिया हो।

कृष्ण की वात के उत्तर मे नारदजी कहने लगे—मैने इसी के लिए आप से प्रश्न किये थे ! वह अभी तो अविवा-हिता ही है परन्तु इसके भाई ने अपने पिता और इसकी इच्छा के विरुद्ध इसका विवाह चन्देरीराज शिशुपाल से ठहराया है तथा अमुक तिथि को विवाह होना भी तय हो गया है। रुक्मिणी शिशुपाल को स्वप्न मे भी नही चाहती। उसने निश्चय किया है कि मेरे लिए कृष्ण ही पति हैं, कृष्ण के

सिवा शेष पुरुष मेरे लिए भ्राता और पिता के समान है। उसके हृदय मे आपके प्रति अपार अनुराग है। राजा भीम की इच्छा भी रुक्मिणी का विवाह आप ही के साथ करने की थी और रुक्मिणी का विवाह आपके साथ करने का प्रस्ताव भी उन्होंने सबके सन्मुख रखा था, परन्तु मूर्ख रुक्म ने अपने पिता के इस प्रस्ताव का विरोध किया। परिणामत. गृहकलह से बचने के लिये राजा भीम रुक्मिणी के विवाह की ओर से तटस्थ हो गये। भीम की शान्ति-प्रियता से अनुचित लाभ उठाने के लिए रुक्म ने अपने मित्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह तय किया है। यद्यपि शिशुपाल को भी यह मालूम हो चुका है कि रुक्म ने यह विवाह का टीका अपने पिता से विरोध करके भेजा है तथा रुक्मिणी भी मुझ से विवाह करना नही चाहती है, फिर भी उसने रुक्मिणी के विवाह का टीका स्वीकार कर लिया है और विवाह की तैयारी कर रहा है।

कृष्ण के हृदय मे रुक्मिणी के चित्र से ही रुक्मिणी के प्रति आकर्षक हो चुका था। नारद की बातों से वह आकर्षक और बढ़ गया। वे रुक्मिणी के प्रेम-रंग मे रग गये। रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के हृदय में उत्पन्न प्रेम ने कृष्ण को अधीर-सा बना दिया। वे नारद से फिर पूछने लगे कि क्या शिशुपाल रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उसको अपनी पत्नी बनाना चाहता है?

नारद—हाँ।

कृष्ण—यदि ऐसा है, तब तो शायद उससे युद्ध भी करना पड़े ।

नारद—हाँ ।

कृष्ण—परन्तु रुक्मिणी के हृदय में मेरे प्रति प्रेम हो, तब भी जब तक वह मुझसे सहायता की याचना न करे, तब तक मैं क्या कर सकता हूँ ?

नारद—रुक्मिणी को आप से प्रेम होगा तो वह आप से सहायता माँगेगी ही ।

कृष्ण—कदाचित रुक्मिणी ने सहायता माँगी भी, तब भी एक दम से शिशुपाल से युद्ध करना कैसे उचित होगा ? कम-से-कम उसे यह तो सूचित कर देना चाहिए कि वह इस प्रकार का अन्याय न करे ।

नारद—यह तो मै आपके बिना कहे ही कर दूंगा । इससे आगे आप जानें और रुक्मिणी जाने ।

यह कहते हुए नारद रुक्मिणी का चित्रपट लेकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये । अपने सामने से रुक्मिणी का चित्र हटते ही और नारद के अन्तर्धान होते ही कृष्ण बहुत व्यथित हुए । उनके लिए उस चित्र का वियोग असह्य हो उठा । वे उस चित्र की मनोहारिणी मूर्ति को अपनी मानसिक आँखों के सामने से न हटा सके ।

रुक्मिणी के प्रेम से आकर्षित कृष्ण उस स्थान से घर आये । रुक्मिणी की प्राप्ति की चिन्ता के साथ ही उन्हें एक विचार और हो उठा । वे सोचने लगे कि रुक्मिणी का विवाह

शिशुपाल के साथ होना तय हो चुका है और शिशुपाल भुआ का लड़का भाई है। उसके साथ रुक्मिणी का विवाह न होने देकर अपने साथ रुक्मिणी का विवाह कर लेने पर क्या ठीक है कि बड़े भ्राता बलदेवजी तथा उनके साथ ही परिवार के और लोग भी मुझसे रुष्ट हो जाये ! इस प्रकार कृष्ण के हृदय में जहाँ एक ओर रुक्मिणी की रक्षा की चिन्ता हो रही थी, वही परिवार-कलह की आशका भी उन्हें व्यथित कर रही थी।

इन दोनों चिन्ताओं के कारण कृष्ण का खाना-पीना भी कम हो चला। उनके शरीर पर चिन्ता और दुर्बलता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। रुक्मिणी सम्बन्धी बहुत कुछ समाचार बलदेवजी भी सुन चुके थे। कृष्ण को चिन्तित और दुर्बल देखकर बलदेवजी समझ गये कि इन्हें रुक्मिणी के लिए चिन्ता है। उन्होंने कृष्ण से कहा कि मेरी समझ से आपको रुक्मिणी के लिए ही चिन्ता है। मैं सुन चुका हूँ कि रुक्मिणी आप ही को पति बनाना चाहती है, शिशुपाल को नही इच्छती। यदि आप इसीलिए चिन्तित हैं तो इस विषय में आपको चिन्ता करने की आवश्कता नही है। जब रुक्मिणी शिशुपाल को नही चाहती तब शिशुपाल उसके साथ कदापि विवाह नही कर सकता। शिशुपाल यदि स्वयं समझ जायेगा और रुक्मिणी के साथ जबरदस्ती विवाह करने का विचार त्याग देगा तब तो ठीक है, नही तो जिस तरह भी बनेगा हम रुक्मिणी के साथ जबरदस्ती करने से उसे रोकेंगे और रुक्मिणी की सहायता

करेंगे । हाँ इतनी बात अवश्य है कि जब तक रुक्मिणी की ओर से किसी प्रकार का समाचार हमारे पास न आये तब तक हमें बीच मे पड़ना ठीक नही है और रुक्मिणी की ओर से समाचार आने के पश्चात हमें मृत्यु से भी लड़कर रुक्मिणी की रक्षा करनी होगी ।

बलदेवजी की बात सुनकर पारिवारिक-क्लेश की आशंका मिट जाने से कृष्ण को प्रसन्नता हुई । उन्हे इस ओर की चिन्ता न रही । अब वे रुक्मिणी की ओर से किसी प्रकार का समाचार आने की ही प्रतीक्षा करने लगे ।

६ : शिशुपाल की तैयारी

'स्वार्थी दोषं न पश्यति'

अर्थात्—स्वार्थी मनुष्य दोष नही देखता, उसकी दृष्टि तो केवल अपने स्वार्थ पर ही रहती है ।

मनुष्य जब स्वार्थ के वश मे हो जाता है तब वह सत्य और न्याय को अपने मे से खो बैठता है । उसके सामने केवल वे ही बातें रहती है जो स्वार्थ-पूर्ति मे सहायक हो । जो बात स्वार्थ मे बाधक है वह तो उसे रुचती ही नही । उसका लक्ष्य तो केवल उसी पक्ष पर रहता है जिसके द्वारा उसे अपना स्वार्थ पूरा होने की आशा है । जिससे स्वार्थ पूरा होने की आशा नही है या जो स्वार्थ मे हानि पहुँचाता है उस पक्ष की ओर तो वह देखता भी नही । यदि कोई व्यक्ति उसके सामने ऐसा पक्ष रखता भी है तब भी वह उस पक्ष पर विचार तक नही करता बल्कि इस प्रकार का पक्ष सामने रखने वाले से वह घृणा और द्वेष करने लगता है । चाहे साक्षात् इन्द्र भी उसके सामने आकर उसे स्वार्थ के लिए सत्य और न्याय को पददलित न करने का उपदेश दे, समझावे, अनुनय-विनय करे और हानि की ओर उसका ध्यान खीचे, तब भी स्वार्थान्ध व्यक्ति उनकी इन बातों पर ध्यान न देगा । बल्कि अपने स्वार्थ

में उन्हें बाधक समझकर वह उनसे द्वष करने लगेगा । वह उस स्वार्थ-कार्य के विपय में न्याय-अन्याय, सत्य-झूठ, उचित-अनुचित की मीमांसा नही सुनना चाहता, न उस पर विचार ही करना चाहता है । अकेले स्वार्थ के वश हो जाने पर ही मनुष्य में इतना वैपरीत्य आ जाता है, फिर भी स्वार्थ के साथ ही हठ का मिश्रण हो जाने पर तो यह दशा और भी अधिक भयंकर हो जाती है । फिर तो उसके विपय में कहना ही क्या है ! ऐसा होने पर तो वह अपना सर्वनाश करने से भी नही हिचकिचाता । रावण, दुर्योधन, कस आदि के उदाहरण इस वात के प्रमाण है ।

शिशुपाल भी स्वार्थ के वश मे हो गया था । वह चाहता था कि रुक्मिणी मेरी पत्नी वने और मै उस सौन्दर्य-लक्ष्मी का स्वामी वनू । इस स्वार्थ के साथ ही उसमे हठ भी था । इस स्वार्थ और हठ के मिश्रण से वने हुए भयकर विष के नशे में मस्त शिशुपाल ने किसी की भी वात नही मानी । ज्योतिषी और भौजाई ने वहुत कुछ समझाया, हानि-लाभ की ओर उसका ध्यान खीचा, परन्तु वह अपना स्वार्थ छोड़ने के लिये तैयार न हुआ ।

शिशुपाल की भौजाई ने शिशुपाल को वहुत कुछ समझाया परन्तु शिशुपाल ने भौजाई के समझाने पर किञ्चित् भी ध्यान नही दिया । वल्कि वह भौजाई से रुष्ट हो गया। भौजाई के महल से लौटकर शिशुपाल ने विचार किंया कि भौजाई मुझे कृष्ण का भय बताकर कहती हैं कि कृष्ण वहाँ

आयेगा ! कृष्ण है भी धूर्त । संभव है कि वह कुन्डिनपुर आये और मेरे विवाह मे किसी प्रकार का विघ्न करे। रुक्म ने भी पत्र तथा टीका लाने वाले भाट के द्वारा कृष्ण की ओर से विघ्न होने की आशका प्रकट की है । इसलिए मुझे युद्ध की पूर्ण तैयारी करके विवाह समय से कुछ दिन पहले ही कुन्डिनपुर जाना चाहिए, जिसमे वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया जा सके और कृष्ण को किसी प्रकार की धूर्तता करने का अवसर भी न मिले । इसके साथ ही एक बात और होगी । भावज कहती थी कि रुक्मिणी मुझे नही चाहती । यदि भाभी का यह कथन ठीक भी होगा तब भी मै विवाह-तिथि से पहले पहुँचकर जब कुन्डिनपुर मे अपनी सेना, अपने वैभव और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करूंगा तब सभव नही कि रुक्मिणी मेरे साथ विवाह न करना चाहे । मेरे वैभव और मेरे सौन्दर्य को देखकर रुक्मिणी स्वयं ही मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट करेगी । इसके सिवा जब रुक्मिणी मेरी बारात को आई हुई और मुझे दूल्हा बना हुआ देखेगी तब वह कृष्ण की ओर से निराश भी हो जायेगी । मै अपनी सेना द्वारा प्रबन्ध भी ऐसा करूंगा कि जिसमें कृष्ण की ओर से रुक्मिणी के पास या रुक्मिणी की ओर से कृष्ण के पास किसी प्रकार का समाचार भी न पहुँच सके । इस कारण भी रुक्मिणी को अपने हृदय से कृष्ण की चाह निकाल देनी पड़ेगी और मेरे साथ विवाह करने के लिये विवश होना पड़ेगा । साथ ही मै समय-समय पर अपनी दासियों को

रुक्मिणी के महल में भेजकर वहाँ के समाचार भी मंगवाता रहूँगा और दासियों द्वारा रुक्मिणी को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा भी करता रहूँगा। इसलिये विवाह-तिथि से पहले ही कुन्डिनपुर जाना अच्छा है। लेकिन मुझे पहले अपने सहायक राजाओं के पास आमन्त्रण भेजकर उन्हे यहाँ बुलवा लेना चाहिये और उनके आ जाने से पश्चात् ही विवाह की तैयारी करानी चाहिए। यदि मैं अभी ही विवाह की तैयारी करवा दू और कही कुटिल कृष्ण के वहकाने मे लगकर सहायक राजागण समय पर न आये तो उस दशा मे मेरा कुन्डिनपुर जाना भी ठीक न होगा और न जाना भी ठीक न होगा। मैं सहायकों के न होते हुए भी कुन्डिनपुर गया और वहाँ कृष्ण से युद्ध मे हार गया तो भारी अपमान होगा और यदि विवाह की तैयारी करवाकर भी कुन्डिनपुर न गया तव भी अपमान होगा। इसलिए मुझे सहायक राजाओ को पहले ही से यहाँ वुला लेना चाहिये और सव राजाओं के आ जाने पर ही विवाह की तैयारी करनी चाहिये। राजाओं को यहाँ वुला लेने पर वे लोग कृष्ण के वहकावे में आने से भी वच जायेगे तथा कदाचित् वे कृष्ण के वहकावे मे आ चुके हों और इस कारण मेरे वुलाने पर न आये तो मेरे लिए जरासन्ध से सहायता मांगने का अवसर शेष रह जायेगा।

इस प्रकार राजनीतियुक्त विचार करके शिशुपाल ने अपने अधीनस्थ और सहायक राजाओं के पास विवाह का

आमन्त्रण भेजकर उन्हें लिखा कि आप लोग अपनी सेना सहित अमुक तिथि को चन्देरी आ जाइये। यह विवाह आप ही की सहायता पर निर्भर है, अतः विवाह की तैयारी तब ही होगी जब आप लोग यहाँ आ जायेंगे।

शिशुपाल का आमन्त्रण पाकर उसके अधीनस्थ राजा तो दलबल सहित चन्देरी आये ही परन्तु सहायक राजाओ में से कुछ आये और कुछ—जो श्रीकृष्ण का प्रताप जानते थे तथा विवाह को अनुचित मानते थे—नही आये। शिशु-पाल को एकत्रित राजाओ तथा उनकी सेना को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह विचारने लगा कि इतनी सेना यह है, मेरी सेना है और कुन्डिनपुर मे रुक्म की सेना है। इन प्रचण्ड सेनाओ द्वारा कृष्ण को जीतकर बाँध लेना बहुत ही सरल बात है। पहले तो कृष्ण एकत्रित सेना का समाचार सुनकर आयेगा ही नही, कदाचित आ भी गया तो वह अपना ही अस्तित्व खोयेगा, उसके कारण मेरे साथ रुक्मिणी का विवाह होने मे किसी प्रकार का विघ्न नही हो सकता। अब मुझे विवाह की तैयारी करनी चाहिए।

शिशुपाल ने नगर, राजमहल आदि सजाने, मंगलाचार करने और विवाह योग्य तैयारी करने की आज्ञा दी। शिशु-पाल की आज्ञानुसार विवाह की तैयारी होने लगी। उस समय शिशुपाल बड़ी प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। वह कुन्डिनपुर के लिए प्रस्थान करने के दिन की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा

इधर तो शिशुपाल विवाह की तैयारी मे लगा है और उधर रुक्म विवाह की तैयारी मे लगा हुआ है। दोनो जगह खूब आनन्द हो रहा है परन्तु रुक्मिणी के हृदय मे किंचित् भी आनन्द नही है, अपितु विषाद है। इसी प्रकार द्वारका मे श्रीकृष्ण भी रुक्मिणी के लिये चिन्तित है और बावा नारद किसी पहाड़ के शिखर पर बैठे हुए कुछ और ही विचार कर रहे हैं। वे सोचते है कि मैं कृष्ण से कह चुका हूँ कि शिशुपाल को सूचित करने का कार्य मै करूगा। इस कारण भी मुझे उचित है कि मैं शिशुपाल को सूचित करू। दूसरे, सभव है कि सूचित कर देने पर शिशुपाल रुक्मिणी के साथ विवाह करने का विचार छोड़ दे और इस प्रकार भावी-युद्ध द्वारा होनेवाला जनसमूह का नाश रुक जाये। इसलिए इस सम्बन्ध का यह अन्तिम कार्य मैं और कर डालू, उसके बाद रुक्मिणी, कृष्ण, रुक्म और शिशुपाल अपनी-अपनी निपटेंगे। मैं तो फिर आकाश में खडा-खड़ा यह देखूगा कि विजयी सत्य और न्याय होता है या असत्य और अन्याय।

इस प्रकार विचार कर नारदजी चन्देरी आये। वे शिशुपाल के यहाँ गये। शिशुपाल ने नारद को विधि सहित प्रणाम करके उन्हे स्वागत-सत्कार पूर्वक बैठाया। शिशुपाल ने ऊपर से तो नारद के आने पर प्रसन्नता ही प्रकट की, परन्तु उसका हृदय अस्थिर था। वह रह-रहकर यही विचारता था कि ये बावाजी और न मालूम क्या कहेगे!

कुशलप्रश्न हो जाने के पश्चात् नारदजी शिशुपाल से

कहने लगे—राजन्, मैंने सुना है कि तुम्हारा विवाह होने वाला है ! नगर तथा राजमहल की सजावट और तुम्हारी प्रसन्नता भी ऐसी ही बता रही है। क्या वास्तव में तुम्हारा विवाह है ?

शिशुपाल—हाँ महाराज, आपने जो कुछ सुना है वह ठीक है। सब आपकी कृपा है। आपकी कृपा से मेरा यह विवाह होगा भी ऐसा कि इस विवाह के समान दूसरा उचित विवाह न तो अब तक हुआ है और न होगा ही।

नारद—अच्छी बात है, राजाओं ने तो अपना जन्म ही इस प्रकार के कार्यों मे यश प्राप्त करने के लिए मान रखा है और ऐसे ही कामों मे राजा लोग ख्याति प्राप्त करते भी है। राजाओं में भी तुम तो बडे राजा हो, इसलिए तुम्हारा विवाह अद्वितीय हो, इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ! परन्तु यह तो बताओ कि विवाह होगा किसकी कन्या के साथ और बारात कहाँ जायेगी ?

शिशुपाल—महाराज, आपकी दया है, इसी से आप पूछ रहे हैं। आपको यह जानकर अवश्य ही प्रसन्नता होगी कि विदर्भ नरेश भीम की कन्या रुक्मिणी के साथ मेरा विवाह अमुक तिथि को होगा। बारात कुन्डिनपुर जायेगी।

नारद- रुक्मिणी के साथ ! वह तो बड़ी ही उत्कृष्ट कन्या है। साक्षात् लक्ष्मी ही मानी जाती है ! उसके साथ विवाह हो, तुम्हारे लिए इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है ! जरा तुम्हारी और रुक्मिणी की जन्म-

कुण्डली तो मंगवाओ ।

रुक्मिणी की प्रशंसा सुनकर, शिशुपाल को वडा ही आनन्द हुआ । उसने तत्क्षण अपनी और रुक्मिणी की जन्म-कुण्डली मगवा कर नारदजी को दे दी । नारदजी बड़े ध्यान-पूर्वक दोनों की जन्म-कुण्डली देखने लगे और अपनी आकृति इस प्रकार वनाने लगे जैसे वड़ा आश्चर्य हो रहा हो । थोड़ी ही देर वाद नारदजी ने अपना सिर हिलाते हुए जन्म-कुण्डलियाँ नीचे रख दी । नारद का सिर हिलाना देखकर शिशुपाल के हृदय में आशंका हुई । उसने नारद से पूछा—महाराज आपने सिर क्यों हिलाया ?

नारद—देखो राजन्, हम सन्त हैं । सन्तों का काम है कि सच्ची वात से अपने भक्त को परिचित कर दें । उन्हें भय या आशा से असत्य कदापि न वोलना चाहिए, किन्तु सदा सच्ची वात ही करनी चाहिए । फिर वह सच्ची वात चाहे अप्रिय ही हो और सुनने वाला न भी माने, परन्तु झूठ वात कदापि न कहनी चाहिये । झूठ वात कहने वाले और सच्ची वात से सावधान न करने वाले लोग शत्रु का काम करते है । नीतिकार कहते हैं—

सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आश ।
राज धर्म तन तीन कर, होय वेग ही नाश ॥

राजन् हम तुम्हारा अहित नही चाहते अपितु हित ही चाहते है ।

शिशुपाल—महाराज मुझे इस वात पर पूरा विश्वास

है । आप नि.संकोच वास्तविक वात कहिये ।

नारद—राजन् रुक्मिणी की जन्मकुडली कुछ और कहती है और तुम्हारी जन्मकुडली कुछ और । तुम्हारी और रुक्मिणी की जन्मकुडली आपस मे मेल नही खाती । इस लिये वहुत संभव है कि रुक्मिणी के साथ विवाह करने की तैयारी करके तो तुम जाओ परन्तु रुक्मिणी के साथ विवाह कोई दूसरा ही करे और तुम्हें अपमानित एवं पराजित होकर रुक्मिणी रहित ही लौटना पड़े । रुक्मिणी की कुण्डली कहती है कि यह कृष्ण की पटरानी वनेगी । वल्कि कृष्ण से इसका मानसिक विवाह तो हो चुका है, शारीरिक विवाह भी उस दिन हो जायगा जो दिन उसके विवाह के लिए नियत हुआ है, इसमे किंचित् भी अन्तर होने वाला नही है । तुम्हारा और रुक्मिणी का विवाह किसी मूर्ख ने वताया है । कोई ज्योतिप का जानकार तो ऐसा विवाह कदापि नही जुड़ा सकता । मैं तुम्हें इस विवाह के भविष्य से सूचित किये देता हूँ, आगे तुम राजा हो, वीर हो, जरासन्ध के स्नेह-भाजन हो इसलिए तुम्हें जैसा उचित प्रतीत होगा वैसा तो तुम करोगे ही ।

नारद की वात सुनकर शिशुपाल का वह ज्योतिपी तो अवश्य प्रसन्न हुआ, जिसने शिशुपाल को टीका स्वीकार करने से रोका था, परन्तु शिशुपाल अप्रसन्न हुआ । अपने मन में कहने लगा कि इन वावाजी को यदि ऐसी वात कहनी थी तो ये मुझे एकान्त में ले जाकर कह देते, जिस में मेरी सभा के लोग और सहायता के लिए आये हुए राजागण हतोत्साह तो न

होते ! कोई दूसरा व्यक्ति यदि ऐसा भयंकर अपराध करता तो मैं उसे मृत्युदण्ड ही देता, परन्तु इन वावाजी से तो कुछ कहते भी नही बनता ! यह भी नही कह सकता कि मेरे यहाँ से चले जाओ । फिर भी इनकी बात की इसी सभा मे और इनके सामने ही उपेक्षणीय वता देनी चाहिए, जिससे यहाँ उपस्थित लोगो पर इनकी वात का प्रभाव न रह सके ।

इस प्रकार विचार कर शिशुपाल ठहाका मार कर कृत्रिम हँसी हँसा । वह कहने लगा—वाह महाराज, आपने अच्छी वात सुनाई ! जान पड़ता है कि आप कृष्ण या भीम से मिल चुके है इसीसे मुझे कुन्डिनपुर जाने मे भय बता रहे है । कदाचित आपने जन्मकुण्डली पर से ही ऐसा कहा हो तव भी आपको यह कदापि न भूल जाना चाहिए कि जन्मकुण्डली आदि का दुष्फल हम राजाओ को नही होता । हमारी सेना जिस ओर प्रस्थान करती है, हम जिस ओर दृष्टि डालते है, उस ओर के क्रूर ग्रहों को भी भाग जाना पड़ता है या वे क्रूर ग्रह भी अच्छा फल देने लगते हैं । रुक्मिणी का विवाह मेरे साथ ठहरा है । मै रुक्मिणी के यहाँ किसी से रुक्मिणी की याचना करने नही गया था, किन्तु रुक्मिणी के यहाँ से मेरे यहाँ विवाह का टीका आया है । यदि रुक्मिणी मेरी पत्नी वनने की इच्छा न रखती होती तो मेरे लिए टीका ही क्यों आता ? इस पर भी कदाचित कोई विघ्न हुआ, कृष्ण वहाँ आया और उसने किसी प्रकार की बाधा डाली तो मेरे ये योद्धागण कृष्ण और उसके सहायकों को अपनी वीरताग्नि

में भस्म कर डालेगे । मै कृष्ण तो क्या, साक्षात मृत्यु से भी भय नही करता । न ये मेरे योद्धा लोग ही करते है। इसलिए आपने भावी आशका से भयभीत करने की चेष्टा व्यर्थ ही की है। भयभीत तो वही हो सकता है जो कायर हो। हम वीरो के पास भय का क्या काम ! हमको तो सदा आमन्त्रित करते रहते हैं। हमारे अस्त्र-शस्त्र शत्रुओं का रक्त चूसने के लिये उत्सुक रहते हैं। यदि कृष्ण मिल गया तो हमारे शस्त्र उसका रक्तशोषण करके अपनी तृषा मिटायेंगे और मुझे विजय-लक्ष्मी के साथ ही रुक्मिणी रूपी लक्ष्मी भी प्राप्त करायेंगे।

यह कहकर शिशुपाल अपने सभासदो की ओर देखकर फिर हँसने लगा। उसके जो सभासद उसीके-से स्वभाव के थे वे भी शिशुपाल की हँसी का साथ देने लगे, परन्तु जो विचारवान थे वे गम्भीर बन बैठे रहे।

शिशुपाल के कथन के उत्तर में नारदजी कहने लगे कि वह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि तुम राजा और वीर हो। इसीलिए अपने ही मन की बात करोगे; मैंने तो भविष्य के भय से तुमको इसीलिए सूचित किया है कि जिसमे तुम सावधान रहो। अच्छा अब हम भी चलते है; यदि हो सका तो कुन्डिनपुर में विवाह की धूमधाम देखेंगे।

यह कहकर नारदजी चलने के लिए खड़े हो गये। 'जैसी इच्छा महाराज' कहकर तथा प्रणाम करके शिशुपाल ने भी उन्हें विदा कर दिया और फिर सभा मे बैठकर अपनी वीरता

की डीग हाकने लगा । शिशुपाल ऊपर से तो प्रसन्न दिख रहा था और विवाह का प्रबन्ध करा रहा था, परन्तु उसके हृदय में चिन्ता ने स्थान कर लिया था । रात के समय वह अपने रनवास मे गया, किन्तु चिन्ता के कारण उसे नींद नही आई ।

शिशुपाल की सभा मे नारदजी जो कुछ कह गये थे, वह बात सारे नगर मे फैल गई । शिशुपाल की रानी को भी मालूम हो चुका था कि यह विवाह करने से पति को नारदजी ने भी उसी प्रकार रोका है जिस प्रकार ज्योतिषी और जिठानीजी ने रोका था। इस प्रकार का निषिद्ध विवाह करने के लिए जाने का परिणाम क्या होगा, इस विचार से शिशुपाल की रानी का चित्त अस्थिर था । उसे भय था कि कही इस विवाह मे मेरे सुहाग का ही बलिदान न हो जाये। वह दीनता दिखाती हुई अनुनय-विनय-पूर्वक शिशुपाल से कहने लगी—नाथ पहले तो आपको दूसरा विवाह करने की आवश्यकता ही नही है । इस पर भी यदि आप विवाह करना ही चाहते हो तो किसी दूसरी राजकुमारी के साथ विवाह कर लीजिये, परन्तु रुक्मिणी से विवाह करने कुन्डिनपुर मत जाइये। जिस विवाह का ज्योतिषी ने भी निषेध किया है और जिस विवाह के लिये जाने का दुष्परिणाम नारदजी ने पहले ही से बता दिया है, वह विवाह करने के लिये कुन्डिनपुर जाने पर कदापि कल्याण नही हो सकता । रुक्मिणी आपकी पत्नी नही बनना चाहती किन्तु कृष्ण की पत्नी बनना चाहती है !

रुक्मिणी के न चाहने पर भी उसके साथ विवाह करने जाना ठीक नहीं। नारद के कथनानुसार कृष्ण वहाँ आयेंगे, वे रुक्मिणी से विवाह भी करेंगे और आपको अपमानित तथा पराजित होकर खाली लौटना पड़ेगा। यदि नारद द्वारा कथित यह भविष्य ठीक निकला तो मुझे भी कितना दुःख होगा! अब तक मैं वीरपत्नी कहलाती हूँ परन्तु फिर कायर-पत्नी कहाऊँगी। कायरपत्नी कहा कर जीवित रहना क्या अच्छा है? इस प्रकार के जीवन से तो मरण ही श्रेष्ठ है। कदाचित आप नारदजी की वात पर विश्वास न करें और वैसे व्यवहारिकता से देखें तब भी आप ही बताइये कि श्रीकृष्ण और बलराम का सामना कौन कर सकता है! आज तक युद्ध में उनसे किसने विजय पाई है! उनसे युद्ध करने वाले के भाग्य में केवल पराजय ही है। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आपके पाँवों पड़ती हूँ और आपसे भिक्षा मांगती हूँ कि आप रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुन्डिन-पुर मत जाइये। आपके कुन्डिनपुर जाने से मुझे मेरे सुहाग का भय है!

पत्नी की बात सुनकर शिशुपाल हँसने लगा। वह कहने लगा कि स्त्रियों में स्वभावतः कायरता होती है। उस कायरता के वश होकर ही तुम मुझसे कुन्डिनपुर न जाने का कह रही हो। परन्तु तुम्हारा इस प्रकार कायरता का परि-चय देना नितान्त लज्जास्पद है। तुम वीर-पुत्री और वीर-रमणी हो। क्षत्रियाणी अपने पति के सामने इस प्रकार की कायरता

भरी बात कदापि नही करती। पहले तो मैं कुन्डिनपुर से आया हुआ विवाह का टीका स्वीकार कर चुका हूँ; सब राजाओं को आमन्त्रण दे चुका हूँ, वे आ भी गये हैं, विवाह की सब तैयारिया भी हो चुकी हैं, ऐसी दशा में मै कुन्डिनपुर न जाऊंगा तो लोग क्या कहेगे ? दूसरे मै कुन्डिनपुर क्यो न जाऊ ? केवल कृष्ण के भय से ? एक ग्वाले के भय से—उस कायर के डर से—मैं कुन्डिनपुर न जाऊ तो लोग मेरे लिए क्या विचारेंगे, मुझे धिक्कारेंगे या नही ? वैसे तो चाहे मै कुन्डिनपुर न भी जाता और रुक्मिणी के साथ अपना विवाह न करता परन्तु कृष्ण से रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए मुझे अवश्य जाना पड़ेगा। रुक्मिणी क्षत्रिय कन्या है। उसका विवाह एक ग्वाले के साथ हो यह क्षत्रियो के लिए नितान्त लज्जास्पद बात है, उसमे भी उस दशा मे जब कि रुक्मिणी के विवाह का टीका मुझे चढ़ाया जा चुका है और रुक्म ने मुझसे प्रार्थना की है कि मै रुक्मिणी के साथ विवाह करके क्षत्रियो की मर्यादा बचाऊगा। वीर-नारी होने के कारण ऐसे समय पर तो तुम्हें उचित है कि तुम मुझे प्रेरणा करके कुन्डिनपुर भेजो और मुझसे कहो कि एक क्षत्रिय कन्या की रक्षा करो, उसे नीच ग्वाले के हाथ न पड़ने दो। तुम वैसे तो मुझे युद्ध के लिए उत्साहित ही किया करती थी परन्तु इस बार तुम इसके विपरीत क्यों करती हो, इसका कारण मै समझ गया। तुम सौत के दुःख से भयभीत होकर ही मुझे ऐसी सम्मति दे रही हो और इसी कारण शत्रु की प्रशसा करने जैसे नीच कार्य मे प्रवृत्त होकर

मुझे कायरता सिखा रही हो। स्त्रियो के लिए सौत का होना बड़ा दुःख है। वास्तव मे कई पुरुष दूसरी स्त्री के वश होकर प्रथम पत्नी की उपेक्षा ही नही करते अपितु उसे कष्ट भी देते है, परन्तु मेरे स्वभाव से तो तुम अपरिचित नहीं हो, मेरे द्वारा तुम्हारे लिए किसी प्रकार का अन्याय हो यह कदापि सभव नही। इस पर भी यदि तुम चाहो तो मुझ से किसी प्रकार की प्रतिज्ञा करा सकती हो। बोलो तुम क्या चाहती हो ?

रानी—पतिदेव आप भूल रहे हैं। मैं सौत से बचने के लिए आपको नही रोकती। मुझे सौत का किंचित् भी भय नही है। यदि मेरे मे बुद्धि होगी तो मेरे लिए सौत भी वहिन के समान प्रेम करने वाली हो जायेगी। मैं आपको कुन्डिनपुर जाने से इसलिए रोक रही हूँ कि जिसमे वहाँ से अपमानित होकर न लौटना पड़े और एक स्त्री के लिए अनेक स्त्रियों को वैधव्य न भोगना पड़े। मैं यह सुन चुकी हूँ कि रुक्मिणी कृष्ण की पत्नी बनना चाहती है और भीम भी रुक्मिणी का विवाह कृष्ण ही से करना चाहते हैं। ऐसी दशा मे केवल रुक्म के बुलाने पर आपका वहाँ जाना ठीक नही है। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप कुन्डिपुनर मत जाइये और कहला दीजिये कि मेरा विवाह हो चुका है, अब और विवाह नही करना है।

शिशुपाल—यह अच्छी बुद्धि सिखाती हो। आखिर स्त्री ही ठहरी न ! स्त्रियों की बुद्धि उल्टी होती ही है। स्त्रियो की सीख में लगकर काम करे तब तो पूरा ही हो जाये।

तुमने यह भी नही विचारा कि मै ऐसी सम्मति कैसे दू ! वास्तव मे तुम इतने दिन मे भी मेरी वीरता और मेरे पराक्रम से अपरिचित ही रही। जिस कृष्ण का तुम भय दिखा रही हो वह भी कोई वीर है ! जो अव तक नन्द की गाये चराता रहा, बंशी बजाकर स्त्रियो को मोहित करता रहा और स्त्रियो के साथ खेलता-कूदता रहा, वह वीरता क्या जाने ! कदाचित जानता भी हो तव भी यह तो हमारे लिये प्रसन्नता की वात है कि हमे एक वीर से युद्ध करने का अवसर मिलेगा। इसलिये मैं तुम्हारी वात कदापि स्वीकार नही कर सकता। क्षत्रियो की लाज वचाने के लिये जव रुक्म ने अपने वाप की भी वात नही मानी, तव मैं तुम्हारी वात कैसे मान सकता हूँ ?

रानी—अच्छी वात है, मत मानिये। परन्तु अब मैं मुझे प्राप्त अधिकार की रक्षा के लिये आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि आप रुक्मिणी के साथ विवाह मत करिये। जिस समय मेरा और आपका विवाह हुआ था उस समय विवाह के नियमानुसार आपने मुझसे यह प्रतिज्ञा की है कि मै तुम्हारी सम्मति के विरुद्ध कार्य न करूगा, किन्तु प्रत्येक कार्य मे तुमसे सम्मति लूगा और तुम्हारी सहमति से ही कार्य करूगा। मै रुक्मिणी के विवाह से सर्वथा असहमत हूँ। इसलिए आपको रुक्मिणी के साथ कदापि विवाह नही करना चाहिये। इसके सिवा विवाह के समय जिस प्रकार मैने दूसरा पति करने का अधिकार नही रखा है उसी प्रकार आपने भी दूसरी पत्नी करने का अधिकार नही रखा है। ऐसी स्थिति मे आप रुक्मिणी के साथ

विवाह कैसे कर सकते है और जब आप अपनी प्रतिज्ञा भग कर रहे हैं तब हमे प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए विवश क्यो किया जाता है ? विवाह-समय की गई प्रतिज्ञा को पुरुष तो भग करे और फिर भी स्त्रियों के लिए उस प्रतिज्ञा का पालन आवश्यक हो यह न्याय नही कहला सकता । हमें अबला समझकर पुरुषो का हम पर इस प्रकार अत्याचार करना कदापि उचित नही है । आप वीर है, आप तो इस प्रकार का अन्याय न करिये ।

पत्नी की बात सुनकर शिशुपाल रुष्ट हो गया । वह कहने लगा—तुम मुझ पर अधिकार जताने चली हो ! पुरुषो पर स्त्रियों का अधिकार ! हमने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नही की है । यदि हमारी ओर से किसी ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की भी हो तो वह हमें कदापि मान्य नही हो सकती । हम पुरुषो को स्त्रियों से इस प्रकार प्रतिज्ञावद्ध होने की आवश्यकता भी नही है । स्त्रियों को हमारी दासी बनकर रहना होगा । हम स्त्रियों के दास नही हो सकते । हमारे लिए स्त्रियां भोग्य हैं । जैसे एक भोग्य-पदार्थ के होते हुए दूसरा भोग्य-पदार्थ लाने, भोगने का हमे अधिकार है, उसी प्रकार एक स्त्री के होते अनेक स्त्रिया लाने का भी हमे अधिकार है । इस विषय में हमे यह देखने की आवश्यकता नही है कि स्त्री सहमत है अथवा नही । तुम्हारी या रुक्मिणी की असहमति हमारे लिये बाधक नही हो सकती । यदि किसी की असहमति हमारे लिए बाधक बनती हो तो हम अपनी शक्ति से

उस असहमति को सहमति में परिणित कर सकते हैं, परन्तु असहमति के कारण किसी कार्य के करने से नही रुक सकते। यह बात साधारण पुरुषों के लिए भी है, फिर हम तो राजा हैं। हमारे लिए तो वही न्याय है जो हमारी इच्छा है। मैं तुम्हे सूचित करता हूँ कि फिर कभी अधिकार की बात मत करना। मैं तुम पर दया करके ही तुमसे कोई प्रतिज्ञा करने के लिए तैयार हुआ था अन्यथा इसकी भी आवश्यकता नही है।

शिशुपाल को क्रुद्ध देखकर बेचारी पत्नी कांप उठी। उसने धीरे से यही कहा कि आप नाराज न होइये, हम तो आपकी दासी ही हैं। यदि आप ही की तरह हम भी बन जाये तब तो आप हमारे अधिकारो की हत्या नहीं कर सकते, परन्तु पुरुपो की तरह हम धर्म नही छोड़ना चाहती। जो लोग हम स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं उन्हें इसका प्रतिफल भी अवश्य भोगना पड़ेगा।

शिशुपाल ने ज्योतिषी, भौजाई, नारद और पत्नी, इनमें से किसी की भी बात नही मानी। बल्कि समझाने से उसका अहकार और बढता जाता था। वह सबके समझाने की अवहेलना करके बारात सजाने लगा।

शिशुपाल की बारात तैयार होने लगी। सहायक राजागण भी अपनी-अपनी सेना सहित तैयार हो गये। हाथी, घोडे, रथ, पैदल सुसज्जित हुए। युद्ध-सामग्री साथ लेने का प्रबन्ध किया गया। चन्दन की चौकी पर बैठकर शिशुपाल

उवटन लगवाने लगा। मंगल गीत होने लगे। सुहागिनें तेल चढाने लगी। तेल उवटन हो जाने पर शिशुपाल ने स्नान किया। फिर दूल्ह-वेश सजा। रत्नों के आभूषण पहने। इस प्रकार शिशुपाल दूल्हा वनकर तैयार हो गया।

दूल्हा वनकर शिशुपाल ने सोचा कि अव भावज के पास चलकर देखें कि वह क्या कहती है। भावज ने मेरे सहायक राजाओ और उनकी सेना को देखा ही है। मैं भी दूल्हा वना हुआ उनके सामने जाऊंगा, इसलिये अव तो वे पूर्व की वातों को भूल रुक्मिणी के साथ विवाह करने को ठीक वतायेगी! शिशुपाल तो अपने सैनिक वल के सहारे इस प्रकार विचार रहा है परन्तु भावज शिशुपाल के सहायक राजाओ के विषय में यह विचारती है कि मेरे मूर्ख देवर ने इन वेचारो को अपने विवाह मे वलि देने के लिए वुलाया है।

शिशुपाल भावज के महल मे गया। उसका अनुमान था कि इस वार मुझे देखकर भावज के चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दौड़ जायेगी या उनने पहले मेरे विवाह का विरोध किया था इसलिए अव मुझे देखकर लज्जित होंगी। परन्तु शिशुपाल का अनुमान गलत निकला। उसे भावज के चेहरे पर कोई अस्वाभाविक परिवर्तन दिखाई न दिया। भावज ने शिशुपाल को—सदा की भांति आदर करके वैठाया। वह शिशुपाल से कहने लगी—देवरजी, मेरे लिए यह वड़ी प्रसन्नता की वात है कि आपने मुझे विस्मृत नही किया। मैं तो समझती थी कि देवरजी मेरे महल से रुष्ट हो गये

हैं और अब तो विवाह की तैयारी में लगे हैं इसलिये मुझे भूल जायेंगे परन्तु मेरे सद्भाग्य से आप मुझे नही भूले। मुझे आपसे एक बार फिर कुछ कहना था, इसलिए अच्छा हुआ जो आप पधारे।

शिशुपाल समझ गया कि भौजाई अपनी पहले की बात पर ही दृढ़ हैं, वे आज भी पहले की ही तरह रुक्मिणी के साथ विवाह करने का निषेध करेगी। उसने विचारा कि ये स्वय कुछ कहे इससे पहले इस विषय मे मुझे ही कुछ कहना ठीक है। इस प्रकार विचार कर वह अपनी भौजाई से कहने लगा—हाँ जो कुछ कहना है कहिये, मैं भी सुनने के लिये ही आया हूँ। परन्तु मै पूछता हूँ कि मेरे विवाह से आपका हृदय क्यों जल रहा है ? आपका मुँह क्यों चढा हुआ है ? मेरे जितने भी मित्र और हितैषी हैं, इस समय वे भी प्रसन्न है, केवल आप ही ऐसी हैं जिन्हें मेरा विवाह नही सुहाता। भला विचार तो करो कि ये सब राजा लोग क्या मूर्ख हैं जो मेरे विवाह के लिये अपने प्राण समर्पण करने तक की तैयारी करके आये है ! केवल तुम्ही बुद्धिमती हो ? कुछ तो विचार रखना चाहिए कि यह कैसे आनन्द का समय है, मैं इस आनन्द मे भाग लेने से क्यों वञ्चित रहूँ ! आप तो केवल अपनी ही हठ पकड कर बैठ गई ! मैं समझता था कि जब दूसरी स्त्रियां मंगलगान करने और तेल चढाने आई है तो भावज भी अवश्य ही आयेगी, परन्तु आप तो बड़ी हठीली निकली। आपको मेरे सिर मौर बंधना उसी प्रकार

अच्छा नही लगा जिस प्रकार वर्षा होने पर और सब वृक्ष तो हरे हो जाते है परन्तु जवास सूख जाता है। अब भी समय है। समझो, अपनी वुद्धि मत चलाओ किन्तु मेरे विवाह के हर्ष मे भाग लो। अन्यथा विवाह तो होगा ही, केवल कहने की बात रह जायेगी।

शिशुपाल की बात के उत्तर मे भावज कहने लगी—देवरजी, यद्यपि रुक्मिणी के साथ विवाह न करने के विषय मे मैने पहले ही आपसे कहा था और मेरे कहने पर आप रुष्ट भी हो गये थे, लेकिन मैं आपके हित को दृष्टि मे रख कर फिर यही कहती हूँ कि आप कुन्डिनपुर मत जाइये। आपकी यह बारात देख कर मुझे भय होता है। मैं विचारती हूँ कि इन वेचारों की स्त्रियां व्यर्थ में विधवा हो जायेगी। आप एक स्त्री के लिए अनेक स्त्रियों का सुहाग नष्ट मत कराइये। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। आपकी जो तैयारी है वह व्यर्थ न होगी। आप इसी तैयारी से मेरे पीहर पधार जाइये, मै अपनी वहिन से आपका विवाह कराये देती हूँ। रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुन्डिनपुर जाकर आप रक्त की कीच मत मचवाइये किन्तु वहाँ सूचना भेज दीजिये कि हम दूसरी लग्न तिथि पर रुक्मिणी के साथ विवाह करेगे।

शिशुपाल—बस भौजाई आपके तो केवल यही बात है कि रुक्मिणी के साथ विवाह न करके मेरी वहिन के साथ विवाह कर लीजिये। आपकी यह बात नही मानी इसी से

आप रुष्ट भी हैं परन्तु मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि कुन्डिनपुर से लौटकर आपकी वहिन से भी विवाह कर लूगा। आप इस कारण अपना मुँह मत चढ़ाइये। आप कहती है कि पहले मेरी वहिन के साथ विवाह करिये, रुक्मिणी के साथ फिर करिये लेकिन यह कैसे सभव है ? आप तो यह सोचती हैं कि रुक्मिणी के साथ पहले विवाह होगा तो मेरी बहिन छोटी रानी होगी और पहले मेरी वहिन से विवाह होगा तो रुक्मिणी छोटी रानी होगी परन्तु ये सब राजा लोग आपकी वहिन के साथ विवाह होना समझ कर नही आये है किन्तु कुन्डिनपुर जाने के लिए आये है। इसलिये इस लग्न तिथि पर विवाह करने के लिए तो कुन्डिनपुर ही जायेगे। हम नीति के इस कथन का उल्लघन कदापि नही कर सकते—

महत्त्वमेतन्महतां नयालंकार धारिणाम्।
न मुंचन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये॥

अर्थात्—नीति का भूषण धारण करने वाले महात्माओं का यही महत्त्व है कि वे घोर विपद पड़ने पर भी अपने आरम्भ किये काम को नही छोड़ते।

भौजाई—देवरजी आप और विवाह न करें यह तो अच्छा ही है क्योकि मेरी एक देवरानी मौजूद ही है। मेरी वहिन से विवाह करने का तो इसलिये कहा था कि आपको दूल्हा वन कर फिर दूल्हा वेश—बिना विवाह करे ही—उतार देना बुरा मालूम होता हो तो मेरी वहिन के साथ विवाह कर लें। यदि आप मेरी वहिन से विवाह न करे तो यह अधिक

प्रसन्नता की वात है परन्तु कुन्डिनपुर मत जाइये। कुन्डिन-पुर जाने से आपकी वढाई न रहेगी। न्यायानुसार जो आपको नही चाहती उसे आप क्यों चाहें ! रुक्मिणी कृष्ण को हृदय से पति मान चुकी है। ऐसी दशा मे क्या आप दूसरे की पत्नी से विवाह करने जायेंगे ? और क्या कृष्ण सहज ही रुक्मिणी को ले आने देंगे ? फिर व्यर्थ मे झगड़े में पड़कर अपमान तथा पराजय क्यो मोल लेते है और धन जन की हानि क्यो करते है।

शिशुपाल—आप अव यह भले कहो कि मैं अपनी वहिन के लिए नही रोक रही हूँ, परन्तु आपका उद्देश्य तो यही है कि एक मैं हूँ और एक मेरी वहिन आ जाये वस हमारा ही एकाधिपत्य हो जाये। रुक्मिणी की ओर से आपको यह भय है कि वह हमारे आधिपत्य मे वाधा डालेगी। यदि आपको यह भय नही है और आप इस उद्देश्य से नही रोक रही हैं तव फिर आपको यह विचार क्यो नही होता कि इतनी तैयारियाँ हो जाने के वाद कुन्डिनपुर न जाने से अप-मान होगा !

भौजाई—देवरजी, अभी कुछ भी अपमान नहीं है और कुन्डिनपुर न जाने पर भी अपमान की कोई वात नही है। अपमान तो तव है जव आप वहाँ से युद्ध में हारकर रुक्मिणी विना ही लौटेंगे। उस समय आप स्वय तो अपने कृत्य पर लज्जित होकर पश्चाताप करेंगे ही, ऊपर से आपको उन लोगो की दुराशीष भी सुननी पड़ेगी जिनके घर के लोग युद्ध में

मारे जायेंगे। इन राजाओं को और इनकी सेना को देखकर आप गर्व से मत फूलो। कृष्ण रूपी अग्नि से ये सब तृण समान भस्म हो जायेंगे। आपका यह दूल्हा वेश और यह मौर निरर्थक, बल्कि अपमानवर्द्धक होगा। आप मुझे उपालम्भ देते हैं कि और स्त्रियां तो मंगल गाने आई और आप मंगल गाने नही आई, परन्तु कोई भी बुद्धिमती तथा सत्यपरायण स्त्री किसी भी दशा मे ऐसा मंगल कदापि न गायेगी जिसके पीछे अमंगल भरा हो। मगल गाने के पश्चात् उस कार्य मे अमगल होने पर उस मंगल गाने वाली स्त्री को दूषण लगता है। मै तो ऐसे विवाह का मगल कदापि नही गा सकती जो मेरी दृष्टि में अनुचित है। आपका भी कर्तव्य यही है कि जो विवाह उचित नही है, नारदजी, ज्योतिषी आदि सभी जिस विवाह का निषेध कर रहे है, जिस विवाह में प्रत्यक्ष की कलह और पराजय की आशंका है तथा जिस विवाह में कन्या और उसके पिता की भावना को पददलित किया जा रहा है, वह विवाह करने का दुस्साहस न करें। आप चदेरी के राजा हैं। आप यहाँ से तो सिर पर मौर बाँध कर चँवर, छत्र से सुशोभित होकर धूमधाम से जाये और वहाँ से हार खाकर भागते हुए आये, इसमे आपकी बड़ाई नही है।

भावज का यह कथन शिशुपाल को असह्य हो उठा। वह क्रोध से त्योरी बदल कर भावज से कहने लगा—वह कृष्ण आपको इतना प्रिय क्यो है, जो आप उसकी बारबार प्रशंसा कर रही हो! क्या वह आपका कुछ लगता है? हम

आपके देवर हैं, फिर भी हमारी तो बुराई-ही-बुराई कर रही हो और उसकी इतनी बड़ाई कर रही हो ! मालूम है कि हम कौन हैं ? हमारे सामने उस ग्वाले की बडाई ! और वह भी हमारी भौजाई द्वारा ! आपको अपनी स्त्री जाति का भी ध्यान नही है ! यह नही देखती कि कहाँ रुक्मिणी और कहाँ कृष्ण ! एक हंसिनी पर कौए का अधिकार कराना चाहती हो ! यदि मेरे यहाँ टीका न आया होता और उस समय रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ हो रहा होता तब भी आपको यही उचित था कि आप प्रेरणा करके मुझे उस क्षत्रिय-कन्या रुक्मिणी को उस काले ग्वाले से बचाने के लिये कुन्डिनपुर भेजती, परन्तु आप तो रोक रही हो ! वह भी कृष्ण का भय दिखा कर ! आपको ऐसा कहते लज्जा भी नही होती ! आप क्षत्रिय-कन्या हो ! वीर-पत्नी हो ! अपने वीर देवर को तुच्छ बताकर ग्वाल की सराहना करना क्या क्षत्रिय नारी का कर्तव्य है ? हमारी सेना देखकर भी आपको कुछ विचार नही होता ! मेरी सेना में ऐसे-ऐसे वीर हैं जो कि कृष्ण ऐसे सैकडो ग्वालों को एक क्षण में मार सकते है ! ऐसे वीरो का अपमान करके कृष्ण की ही बडाई करती जा रही हो । मैं अब तक आपको बड़ी बुद्धिमती समझता था । कामकाज मे आपसे सम्मति लिया करता था, परन्तु आपका वास्तविक रूप आज मालूम हुआ । अब तक तो आप छिपी ही रही, लेकिन आज मुझे मालूम हो गया कि आपकी सीख मानने वाले का कल्याण

कदापि नही हो सकता। आखिर आप भी तो स्त्री ही ठहरीं न ! स्त्रियो में बुद्धि कहाँ से हो सकती है ! स्त्रियों के विषय मे नीतिकारो ने कहा ही है कि—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः ॥

अर्थात्—जो कृती पुरुष स्त्रियों की छोटी-वड़ी या थोड़ी वहुत वात मानता है, वह सव तरह से नीचा देखता है।

इस विषय मे आप कैसे वच सकती थी ! आज किसी वड़े-से-वड़े क्षत्रिय राजा की भी ताकत हमारी ओर आँख उठा कर देखने की नही है, फिर वेचारा कृष्ण ग्वाला हमारे सामने क्या चीज है ? लेकिन आपने तो उसकी ऐसी वड़ाई की कि जैसे उसके वरावर संसार में दूसरा कोई है ही नही ! मै मेरे शत्रु के प्रशंसक को अपने राज्य में कदापि नही रहने दे सकता। आपसे भी मैं यही कहता हूँ कि आपके लिये मेरे राज्य मे स्थान नही है। आप रथ जुतवाकर जल्दी-से-जल्दी अपने पिता के यहा चली जाइये।

शिशुपाल क्रोध में जल रहा था और लाल--लाल आँखे करके भावज को अपना क्रोध जता रहा था, परन्तु भावज ऐसी दुर्वल-हृदय की न थी जो शिशुपाल के क्रोध से भय खाकर अनुचित कार्य को भी उचित मान लेती और उससे सहमत हो जाती। यद्यपि शिशुपाल ने उससे यह भी कह दिया कि आप मेरे यहाँ से चली जायें, फिर भी उसने अपना स्वाभाविक धैर्य नही त्यागा। उसने शिशुपाल से

कहा—देवरजी स्त्रियों के लिये ससुराल से पीहर और पीहर से ससुराल जाना कोई लज्जा की बात नही है। हमारे लिए इन दो स्थानो के सिवा तीसरा स्थान है भी तो नही ! आप कहते है तो मै पीहर चली जाऊँगी परन्तु आपकी बारात की चढ़ाई तो देख लू ! पीहर जाकर भी मैं दूसरी स्त्रियों की तरह सदा के लिए इस घर को छोड़ देने वाली नही हूँ। मेरा अधिकार पिता के घर पर उतना नहीं रहा जितना इस घर पर है। इस घर में मैं अधिकार पूर्वक रहूँगी। फिर भी इस समय यदि यहाँ से मेरे जाने से आपको सन्तोष होता होगा तो मै चली भी जाऊगी लेकिन आपसे तो फिर यही कहूँगी कि आप कुन्डिनपुर मत जाओ और श्वसुर दमघोष के वंश को कलक मत लगाओ। मेरा कथन आपको अभी तो बुरा लगता है, लेकिन मेरे कथन के विरुद्ध काम करने पर आपको मेरा कथन याद आयेगा। आपको अपनी सेना और वीरता का गर्व है परन्तु मैं भी देखती हूँ कि आप रुक्मिणी को किस प्रकार विवाह कर लाते है। यदि मैं पीहर गई भी तो जब आप रुक्मिणी को लेकर आयेंगे तब मैं रुक्मिणी को देखने और उसे आशीर्वाद देने के लिये आपके सन्देश की प्रतीक्षा किये बिना ही अपने पिता के घर से यहाँ चली आऊंगी।

भावज की बात समाप्त होते ही गर्वी शिशुपाल भावज के महल से चल दिया। उसकी बारात तैयार हो चुकी थी। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सुसज्जित खड़े थे। प्रस्था-

नकालीन मगलवाद्य वज रहे थे। गायक गण गा, रहे थे। वन्दीजन यश उचार रहे थे और स्त्रियां मगलगीत गा रही थी। नगर की वहुतेरी स्त्रियां वारात देखने के लिये अटारियो पर खड़ी हुई थी। शिशुपाल ने भावज के महल से लौट कर वारात कूच करने की आज्ञा दी। शिशुपाल भी छत्र चँवर से सुशोभित होकर एक अत्यधिक सजे हुए बड़े हाथी पर सवार हुआ और भेरीनाद के साथ उसकी वारात ने चन्देरी से कुन्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया।

७ : कुन्डिनपुर में—

मनुष्य के पतन का सब से बड़ा कारण अभिमान है। अभिमान के कारण मनुष्य का जितना अधिक पतन होता है उतना पतन किसी और कारण से शायद ही होता हो। अभिमान के वश हुआ मनुष्य पतित से भी पतित कार्य करता जाता है, फिर भी वह उस पतित कार्य को अपने गौरव का कारण मानता है। उस पतित कार्य पर भी उसे गर्व होता है। धन, राज्य या बल से पुष्ट अभिमान तो मनुष्य को पतन की चरम सीमा पर पहुँचा देता है। ऐसे अभिमान से भरा हुआ व्यक्ति धन, राज्य या बल का अधिक-से-अधिक उपयोग अपना अभिमान बढाने मे ही करता है। उसमें से सरलता, सहिष्णुता और नम्रता निकल जाती है। वह अभिमान में पड़कर असरलता, कठोरता और असहिष्णुता का व्यवहार करने लगता है। उसमे एक प्रकार की विक्षिप्तता आ जाती है, जो उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। गर्वोन्मत्त व्यक्ति उस कार्य में आगे बढ़ता ही जाता है जिसके लिए उसने गर्व-पूर्वक विचार किया हो। ऐसा करने मे फिर चाहे उसे धर्म, न्याय और सत्य को पददलित करना पड़े तब भी वह पीछे न हटेगा किन्तु इन सबको पददलित करता हुआ बढ़ता ही

जायेगा । उस कार्य के परिणाम पर विचार करने की बुद्धि तो उसमे रहती ही नही है । उसमे केवल अपनी वात, अपने सम्मान और अपनी कीर्ति-रक्षा की ही वुद्धि रहती है । वह पहाड़ ऐसे वडे, दूध ऐसे उज्ज्वल और सूर्य ऐसे प्रत्यक्ष सत्य, न्याय और धर्म की भी हत्या कर डालता है, रुकता नही है । वह जव भी रुकता है, अपने से वडी शक्ति की टक्कर से पिछड़ कर ही । फिर वह शक्ति राजसी, तामसी या सात्विक कैसी भी क्यो न हो परन्तु उसका अभिमान तो तभी उतरता है जव वह किसी वड़ी शक्ति से टकरा कर गिरता है । अपने से वडी शक्ति से टकरा कर गिरने के पश्चात वह अभिमानी व्यक्ति वैसा ही वन जाता है जैसी शक्ति की टक्कर से उसका अभिमान उतरा है । यदि वह सात्विक शक्ति की टक्कर से गिरता है यानी क्षमा, दया, सहिष्णुता के सघर्ष या इनके उपदेश से उसका अभिमान उतरता है तव तो वह भी क्षमा-शील, दयाल और सहिष्णु वन जाता है । फिर उसमे से अभि-मान सदा के लिए नष्ट हो जाता है । यह वात कतिपय उदा-हरणो पर दृष्टि देने से अधिक पुष्ट हो जाती है । अर्जुन माली सुदर्शन सेठ की सात्विक शक्ति से टकरा कर गिर था । परिणामत. वह स्वय भी सात्विक प्रकृति का वन गया । परदेशी भी केशी श्रमण के सात्विक शक्ति के उपदेश से टकरा कर गिरा और सात्विक प्रकृति का वन गया । चण्डकौशिक साप भी भगवान महावीर की सात्विक प्रकृति के सघर्ष से सात्विक प्रकृति का वन गया । सा।त्विक शक्ति से टकरा कर

गिरनेवाला अभिमानी सात्विक प्रकृति का ही बन जाता है। इसी प्रकार राजसी और तामसी शक्ति से टकरा कर गिरने-वाला राजसी और तामसी प्रकृति का बन जाता है। दुर्योधन पाण्डवों की राजसी शक्ति से टकरा कर कई वार गिरा परन्तु वह अधिकाधिक राजसी प्रकृति का ही बनता गया और अन्त मे उसका नाश ही हुआ। तामसी प्रकृति से टकरा कर गिरने पर तामसी प्रकृति के बनने के उदाहरण तो प्राय. देखने मे आया ही करते हैं।

तात्पर्य यह है कि किसी बड़ी शक्ति से टकरा कर गिरने पर अभिमानी का गर्व तो टूट जाता है परन्तु एक शक्ति ऐसी होती है कि जिससे टकरा कर गिरने पर आत्मा कल्याण की ओर अग्रसर हो जाता है और दूसरी शक्ति ऐसी होती है कि जिससे टकरा कर गिरने पर आत्मा अवनति की ओर अधिक बढ़ जाती है। फिर उसका अभिमान क्रोध, प्रतिहिसा आदि में परिणत हो जाता है।

शिशुपाल और रुक्म दोनों ही अभिमानी थे। अभि-मान के वश होकर दोनो ही ने किसी की हितशिक्षा नही मानी। दोनों गर्वोन्मत्त होकर सत्य, न्याय और धर्म को पद-दलित करते हुए बढ़ते जा रहे है। देखना है कि दोनों किस महाशक्ति से टकरा कर गिरते है और फिर भविष्य कैसा बनता है।

सरसत भाट जैसे ही शिशुपाल को टीका चढ़ा कर लौटा, वैसे ही रुक्म ने विवाह-सम्बन्धी समस्त तैयारी करनी

प्रारम्भ कर दी । उसने सारे नगर को भली भाँति सजवाया। बाजार, मार्ग, उद्यान आदि के सौन्दर्य मे वृद्धि कराई। बारात और आमन्त्रित राजाओ के ठहरने के लिए अनेक महल सजवाये तथा कई नये महल बनवाये । सब स्थानो पर खान-पान की सामग्री रख कर सेवक नियुक्त कर दिये गये। यह सब करने के साथ ही उसने युद्ध की भी तैयारी कराई । सैनिको को युद्ध शिक्षा मिली । उनका मान-सम्मान करके उन्हें सन्तुष्ट किया गया और भविष्य के विषय मे भी आशा बँधाई गई ।

एक ओर रुक्म तो विवाह की तैयारी मे लगा है । दूसरी ओर महाराज भीम दर्शक की भाँति सब देख सुन रहे है और तीसरी ओर रुक्मिणी कृष्णानुरागिनी बन कर अपना अनुराग पूरा करने का विचार कर रही है। महाराज भीम का साथी उनका चतुर और बुद्धिमान मन्त्री है। रुक्मिणी का साथ देने वाली महाराज भीम की बहिन है जो बुद्धिमती है और रुक्म का साथ देने वाली उसकी अदूरदर्शी माता है। महाराज भीम रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ होने के पक्षपाती होते हुए भी रुक्मिणी के विवाह सम्बन्धी कार्य या विचार मे कोई भाग नही लेते, न उन्हें अपनी इच्छा पूरी होने का कोई प्रत्यक्ष कारण ही दिखाई देता है । इसलिए भीम के विषय मे किसी प्रकार का परिणाम देखने की आवश्यकता नही रहती । परिणाम तो रुक्मिणी और रुक्म के परस्पर विरोधी विचारों का देखना है कि किसका विचार

सफल होता है और किसका निष्फल।

रुक्म विवाह सम्बन्धी तैयारी तो कर चुका था परन्तु उसके मन में शिशुपाल की ओर से सन्देह था कि कहीं शिशुपाल कृष्ण से भय न खा जाये या किसी के बहकावे में न आ जाये ? इस सन्देह के कारण उसने रुक्मिणी को तेल नहीं चढवाया था और चन्देरी में अपने गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे कि वे चन्देरी से बारात विदा होते ही खबर दे। उसका विचार था कि बारात की चढाई की खबर मिल जाने पर ही रुक्मिणी को तेल चढ़ाया जाये। पहले तेल चढा देने पर यदि शिशुपाल न आया तो मेरे लिए बडी लज्जा की बात होगी।

रुक्म को चन्देरी में नियुक्त गुप्तचरों की ओर से धावन द्वारा यह समाचार मिला कि शिशुपाल बारात लेकर कुन्डिनपुर की ओर प्रस्थान कर चुके हैं और बारात मे ऐसे-ऐसे इतने मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि है। यह समाचार पाकर रुक्म को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका सन्देह मिट गया। उसने आज्ञा दी कि राजमहल में मगलाचार किया जाये और रुक्मिणी को तेल चढ़ाया जाये। रुक्म की आज्ञानुसार रुक्म की माता राजमहल में मगलगान कराने लगी। उसने रुक्मिणी पर तेल चढ़ाने के लिए सुहागिन स्त्रियो को बुलवाया और रुक्मिणी की सखियों को आज्ञा दी कि रुक्मिणी को श्रृङ्गार करा कर ले आओ जिससे उसे तेल चढ़ाया जाये।

रुक्मिणी की सखियाँ प्रसन्न होती हुई रुक्मिणी के पास गई। वे खिन्न रुक्मिणी से कहने लगी—सखी शुभ समय

में तुम उदास क्यों बैठी हो ? तुम्हारे लिए तो चदेरीराज महाराज शिशुपाल बारात जोड़ कर आ रहे है और तुम मलिन वस्त्र पहने बैठी हो ! चलो महारानी तुम्हे बुला रही हैं। आज तुम्हे तेल चढ़ाने का दिन है। दो चार दिन में बारात भी आ जायेगी। आओ तुम्हें शृङ्गार कर दे। विलम्ब मत करो, विलम्ब होने पर शुभ-मुहूर्त बीत जायेगा।

सखियों की बात सुनकर भी रुक्मिणी वैसी ही गम्भीर बनी रही। उसने गम्भीरता-पूर्वक सखियो से कहा— सखियो तुम जाओ और उसे तेल चढाओ जिससे विवाह करने के लिये शिशुपाल बारात सजाकर आ रहा हो। मुझे न तो शृङ्गार ही सजना है, न तेल ही चढवाना है।

सखियां—महारानीजी आपके लिये बैठी है, सुहागिने तेल चढाने के लिए मगलगान कर रही है, बारात ,मार्ग मे है नगर मे विवाह की धूम मची हुई है और जिनका विवाह है, वे तुम इस प्रकार उत्तर दे रही हो ! शिशुपाल और किसके लिए बारात सजा कर आयेंगे ? वे तो तुम्हारे लिए ही आ रहे है। इसलिये उठो, देर मत करो, मगलकार्य के समय इस प्रकार की आनाकानी अच्छी नही होती।

रुक्मिणी—बस सखियो इस विषय मे मुझ से कुछ और न कहो। मुझे न तो शिशुपाल के साथ विवाह करना है, न तेल ही चढ़वाना है। मेरा विवाह जिसके साथ होना था, उसके साथ हो चुका, अब दूसरे के साथ कदापि नही हो सकता। तुम जाकर माता से भी ऐसा ही कह दो।

सखिया—वहिन रुक्मिणी तुम यह क्या कर रही हो, जरा विचारो। वड़े पुण्य-व्रत के फलस्वरूप ही शिशुपाल जैसा वीर, पराक्रमी, वैभवशाली और सुन्दर पति प्राप्त हो सकता है। तुम्हे ऐसे पति की पत्नी वनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है लेकिन तुम्हारी वातो से जान पड़ता है कि तुम्हारे भाग्य में कुछ और ही वदा है, इसी से तुम इस प्राप्त सुअवसर को ठुकरा रही हो।

रुक्मिणी—सखियो, तुम लोगों का अधिक वाद-विवाद में पड़ना ठीक नही। मेरा विवाह कृष्ण के साथ हो चुका। अव इस जन्म में तो मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ नही हो सकता। मेरा भाग्य कैसा है, इसे मैं ही जानती हूँ, मेरे भाग्य की वात तुम लोग नही जान सकती।

रुक्मिणी की सखियां निराश होकर लौट गई। उन्होने रुक्मिणी का उत्तर रुक्मिणी की माता को सुनाकर कहा कि रुक्मिणी कृष्ण को अपना पति वना चुकी है, इसलिए अव वह शिशुपाल के साथ विवाह करने को तैयार नही है, न वह तेल चढ़वाने के लिए आती है। रुक्मिणी की सखियो द्वारा रुक्मिणी का उत्तर सुनकर रुक्मिणी की माता को वहुत दु.ख हुआ। उसने एकत्रित सुहागिनो को यह कह कर विदा कर दिया कि रुक्मिणी का स्वास्थ्य कुछ अच्छा नही है इसलिए आज रुक्मिणी को तेल न चढाया जा सकेगा।

रुक्मिणी की माता के हृदय मे रुक्मिणी के उत्तर से वहुत चिन्ता हो गई। उसे इस वात की आशंका ने कंपा

दिया कि यदि रुक्मिणी ने अपना विचार न बदला तो क्या परिणाम होगा ! मैंने पति की बात से असहमत होकर पुत्र की बात का समर्थन किया, परन्तु यह क्या पता था कि पुत्री के हृदय मे कुछ और ही है। यदि रुक्मिणी अपने विचार पर दृढ़ रही तो और जो कुछ होगा वह तो होगा ही लेकिन मै पति को मुँह दिखाने योग्य न रहूँगी। इस प्रकार भविष्य की चिन्ता से व्याकुल रुक्मिणी की माता रुक्मिणी के पास आई। उसने देखा कि रुक्मिणी विचारमग्ना बैठी है। वह प्यार जताती हुई रुक्मिणी से कहने लगी—पुत्री तुझे क्या हुआ है ? कही विवाह जैसे शुभ कार्य के मुहूर्त-समय मे भी इस प्रकार उदास होकर बैठा जाता है ? सारे नगर मे तो आनन्द हो रहा है, सब लोग हर्षित हैं और तू इस प्रकार उदास है ! मै तेरी अशुभचिन्तिका तो हूँ नही, न तेरा भाई अशुभचिन्तक है। हमने तेरे सुख के लिये विरोध सहा और शिशुपाल ऐसे पुरुष के साथ तेरा विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया, फिर तू क्या विचार कर इस तरह रूठी बैठी है ? आज सारे ससार मे ढूढने पर भी शिशुपाल ऐसा पुरुष नही मिल सकता। वे सुन्दर है, युवक है, बलवान है, वीर हैं, राज्यवैभव सम्पन्न है, ९९ राजा उनके आधीन है और महाराज जरासघ उनसे मित्रता रखते है। ऐसा पुरुष कोई साधारण पुरुष है ? ऐसे पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कौन मूर्ख कन्या न रखेगी ! ऐसा पति किसके भाग्य मे बदा है ! अनेक राजकुमारिया उनसे अपना पाणि-ग्रहण करने की प्रार्थना करती

है, फिर भी उन्हे यह सौभाग्य प्राप्त नही होता, जो सौभाग्य रुक्म की कृपा से तुझे विना श्रम के ही प्राप्त हो रहा है। शिशुपाल तेरे साथ विवाह करना कदापि पसन्द न करते यदि रुक्म की उनसे मित्रता न होती। रुक्म से मित्रता का सम्बन्ध होने से ही उनने यह विवाह स्वीकार किया है। तुझे रुक्म का अत्यन्त आभार मानना चाहिये, लेकिन तूने सखियो को जो उत्तर दिया उससे तो जान पड़ता है कि तू रुक्म के सम्मान और परिश्रम को मिट्टी से मिलाना चाहती है। क्या तुझे ऐसा करना उचित है? उठ चल, इस शुभ मुहूर्त में सुहागिनों से तेल चढ़वा ले। तू नही आई इससे मैंने सुहागिनों को विदा कर दिया है परन्तु कोई हर्ज नही, मैं उन्हें अभी बुलवाये देती हूँ।

रुक्मिणी की माता तो समझ रही थी कि मेरी वातो का रुक्मिणी के हृदय पर अनुकूल प्रभाव पड़ रहा होगा, परन्तु रुक्मिणी को माता की वाते शूल की तरह चुभ रही थी। वह सोच रही थी कि यदि माता ऐसी वाते न कहें तो अच्छा। माता की वात समाप्त होने पर रुक्मिणी कहने लगी—माता मेरा विवाह हो चुका, अव मेरा विवाह नही हो सकता। आर्यपुत्री का विवाह एक ही वार होता है, एक वार से अधिक नही होता। मैं शिशुपाल की निन्दा नही करती। वह जैसा आप कहती है वैसा ही होगा, परन्तु मेरे लिए तो वह किसी काम का नहीं है। मैंने जिसे अपना पति वनाया है उससे वढ़कर सुन्दर, वीर, पराक्रमी तथा ऋद्धि-समृद्ध कोई पुरुप है ही नही और

कदाचित हो भी तो मै ऐसा मानने को तैयार नही । खेद की बात तो यह है कि आप माता होकर और मेरा उत्तर सुन कर भी मुझ से शिशुपाल के साथ विवाह करने का आग्रह कर रही हैं । आश्चर्य है कि आप अपनी पुत्री को व्यभिचार सिखाना चाहती हैं । आप भाई के लिए कहती हैं कि भाई ने मेरे ऊपर उपकार किया है, परन्तु मै ऐसा नही समझती। भाई ने अपना स्वार्थ देखा है, मुझ पर कृपा नही की है । भाई को उचित तो यह था कि वह एकदम से पिता की बात का विरोध न करके मेरी इच्छा जानने की चेष्टा करता, परन्तु उसने स्वार्थ और हठ के वश होकर मेरी इच्छा के विरुद्ध दूसरे के यहाँ टीका भेज दिया । ऐसी दशा मे भाई का मुझ पर क्या उपकार है ? आपने भी तो मेरे साथ होने वाले अन्याय का प्रतीकार करने के बदले भाई का साथ दिया है ! अब आप मुझ से भाई की और अपनी बात रखने को कहती है, परन्तु मुझसे यह कैसे हो सकता है कि आपकी बात रखने के लिए मै धर्म और अपने जीवन को नष्ट कर डालू ! इस भव मे तो मुझसे आपकी इच्छानुसार कार्य न होगा । मै अपना यह शरीर अग्नि को तो अर्पण कर सकती हूँ परन्तु श्रीकृष्ण के सिवा दूसरे पुरुष को अर्पण नही कर सकती । आप चाहे मेरी निन्दा करे या प्रशसा, मै उस मार्ग को कदापि नही त्याग सकती, जो धर्म तथा न्याय द्वारा अनुमोदित एवं अनेक आर्य-कन्याओ द्वारा आचरित है और जिस पर मुझे विश्वास है । आप शिशुपाल को सूचित कर दीजिये कि यदि वह मुझे पाने की

आशा से आया है तो चुपचाप लौट जाये। उसे मैं तो क्या, मेरी छाया भी नही मिल सकती।

रुक्मिणी को जो कुछ कहना था, उसने माता से स्पष्ट कह दिया लेकिन माता रुक्मिणी के उत्तर में तर्क करके रुक्मिणी को समझाने की फिर चेष्टा करने लगी। वह कहने लगी—पुत्री, मैं तुझे दूसरा पति बनाने को कब कह रही हूँ और ऐसा कह भी कैसे सकती हूँ! अभी तेरा विवाह कब हुआ है, जो तू कहती है कि मेरा विवाह हो चुका?

रुक्मिणी—माता, विवाह का अर्थ है अपने आपको किसी को समर्पण करना। मैं अपने आप को श्रीकृष्ण के समर्पण कर चुकी हूँ और जब मैं श्रीकृष्ण को समर्पित हो चुकी, तब आपका कहना मानकर अपने आप को दूसरे के समर्पण करना, दूसरा विवाह नही तो क्या है?

माता—तू और कृष्ण के समर्पण? बेटी, कुछ विचार तो कर कि कहाँ तू और कहाँ कृष्ण! तू क्षत्रिय-कन्या है और उस के तो माता-पिता का भी पता नही है! तू सुन्दरी, वह कुरूप है, तू गोरी है, वह काला है! तेरा और उसका जोड़ किसी भी तरह नही जुड़ता। कोई तेरा यह विचार सुनेगा तो क्या कहेगा!

रुक्मिणी—कोई कुछ भी कहे, मेरे लिये तो श्रीकृष्ण ही पति हैं। आप उनके कुल, रूप आदि के विषय में जो कुछ कहती हैं वह ठीक नही हैं। इस विषय की सब बाते मुझे नारदजी से मालूम हो चुकी हैं। कदाचित आपका कथन ठीक

भी हो, तब भी प्रेम न तो जात-पाँत देखता है, न सुन्दर-असुन्दर। प्रेमी को तो प्रिय वही लगता है, जिससे वह प्रेम करता है। इसके सिवाय शरीर का काला, गोरा रंग मनुष्य की अच्छाई, बुराई का कारण नही हो सकता। न तो सब काले आदमी बुरे ही होते हैं, न सब गोरे आदमी अच्छे ही होते है। बल्कि कही-कही गोरे की अपेक्षा काले का महत्त्व है। आँख की पुतलियाँ यदि काली न हो—सफेद हो—तो अन्धा बनना पड़ेगा। सिर के केश यदि काले से उज्ज्वल हो जाये तो अशक्तता के पजे मे फंसना पड़ेगा। काली कस्तूरी को सभी चाहते है, लेकिन सफेद सखिया को केवल मरने की इच्छा करने वाला ही चाहता है। कृष्ण यदि काले है तो मेरे लिए है, दूसरे को इसकी व्यर्थ चिन्ता क्यो ?

माता—यदि ऐसा ही था तो मुझे पहले कह देना चाहिए था। अब जब कि बारात आ रही है, तेरा यह ढग कैसे ठीक है ? यदि तू ऐसी हठ पकड़ कर बैठ जायेगी तो इसका परिणाम क्या होगा, यह तो विचार !

रुक्मिणी—माता, मुझ से किसी ने पूछा ही कब था, जो मैंने नही कहा ? मुझसे बिना पूछे चुपचाप छिपा कर टीका भेज दिया और अब कहती हो कि पहले क्यों नही कहा ? बल्कि टीका चढ़ जाने के बाद जब मेरी सखियों ने मुझसे टीका चढ जाने का समाचार सुनाया था तब मैंने उसी समय मेरे ये विचार प्रकट कर दिये थे जो आपको मालूम भी हो गये थे, फिर भी आपने इस विषय में कोई विशेष

विचार नही किया और अब मेरे सिर दोष रखती हो ! रही परिणाम की वात, परन्तु मुझे परिणाम का किंचित् भी भय नही है । मुझे शरण देने के लिए मृत्यु मेरे समीप ही खडी रहती है, फिर मैं परिणाम का भय क्यो करूँ ? परिणाम का भय तो उसे हो सकता है जो मरने से डरती हो । मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि यह शरीर यों तो कृष्ण के अर्पण है, परन्तु यदि उन्होने इसे स्वीकार न किया और किसी दूसरे ने इस पर अपना अधिकार जमाना चाहा तो फिर मैं यह शरीर अग्नि के समर्पण कर दूगी, लेकिन जीवित रहती तो इस पर दूसरे का अधिकार न होने दूगी ।

रुक्मिणी की माता को रुक्मिणी के उत्तर से वहुत निराशा हुई । उसने विचार किया कि अभी रुक्मिणी उद्विग्न है, इसलिएं इस समय इससे अधिक वातचीत करना ठीक नहीं । इसे शान्त होने देना अच्छा है । इस प्रकार विचार कर वह वहाँ से यह कहती हुई चली कि रुक्मिणी मेरी वात का उल्लघन करेगी, यह आशा मुझे स्वप्न मे भी न थी । रुक्मिणी ने भी वहाँ से जाती हुई माता को उसकी वात के उत्तर में यह सुना दिया कि मुझे मेरा जीवनसाथी चुनने के अधिकार से वंचित कर दिया जायगा, यह आशका मुझे स्वप्नं में भी न थी ।

रुक्मिणी के पास से जाकर रुक्मिणी की माता विचारने लगी कि रुक्मिणी को समझाने के लिए क्या उपाय किया जाये ! दूसरे दिन उसने रुक्म की स्त्री को रुक्मिणी के पास

रुक्मिणी को समझाने के लिए भेजा। रुक्मिणी की भावज ने भी हँसी-दिल्लगी करते हुए रुक्मिणी को खूब समझाया, परन्तु किसी प्रकार सफलता नही मिली। उसे भी निराश ही लौटना पड़ा। रुक्मिणी की माता ने विवश होकर सब हाल रुक्म से कहा। रुक्म ने विचार किया कि इस समय रुक्मिणी को समझाना ठीक न होगा। अभी तो बारात की अगवानी करनी चाहिये। सभव है कि वारात आ जाने पर शिशुपाल और वारात को देखकर रुक्मिणी का हृदय पलटे। वारात और शिशुपाल को देखकर भी यदि रुक्मिणी ने अपना विचार न वदला तो फिर मै समझाऊगा और यदि मेरे समझाने पर भी न समझी तब बल-प्रयोग करूगा। इस प्रकार विचार कर रुक्म ने अपनी माता से रुक्मिणी को फिर समझाने के लिए कहा और आप वारात की अगवानी के लिये तैयारी कराने लगा।

शिशुपाल की बारात चन्देरी से कुन्डिनपुर के लिये चली। ज्योतिषी, भावज, नारद और पत्नी ने तो शिशुपाल को कुन्डिनपुर जाने से रोका ही था, मार्ग मे प्रकृति ने भी अपशकुनो द्वारा कुन्डिनपुर जाने का निषेध किया। परन्तु शिशुपाल जब नारद ऐसे महर्षि की बात भी ठुकरा चुका था तब वह बेचारे अपशकुनों को कब मानने वाला था! अनेक और भयकर अपशकुनों की अवहेलना करता हुआ शिशुपाल वारात सहित कुन्डिनपुर के समीप पहुँचा। मार्ग में उसकी सुन्दर बारात देखकर दर्शकगण खूब प्रशसा करते थे, परन्तु

उन्हें क्या पता कि इस बारात का भविष्य बुरा है और इस बारात का दूल्हा हठपूर्वक एक कन्या से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए जा रहा है, इसलिए जब यह परास्त लौटेगा तब सब बात मालूम होने पर हमें इसकी निन्दा भी करनी पड़ेगी।

इधर रुक्म ने जब सुना कि अब बारात कुन्डिनपुर से थोड़ी ही दूर पर है, तब वह भी बड़ी सजधज के साथ बारात की अगवानी करने के लिए चला। उसके साथ की सेना, सजे हुये हाथी, घोड़े और पुरजन परिजन को देखकर यही अनुमान होता था कि यह भी एक बारात है, जो चन्देरी से आने वाली बारात से संगम करने जा रही है। कुन्डिनपुर के समीप—चन्देरी और कुन्डिनपुर के मार्ग मे—शिशुपाल और रुक्म का सम्मिलन हुआ। रुक्म के साथियों ने शिशुपाल की बारात के लोगों का खूब आदर-सत्कार किया। रुक्म और शिशुपाल भी मिलकर बहुत प्रसन्न हुये। रुक्म कहने लगा कि इस अवसर पर आपने पधारकर मुझ पर बड़ा उपकार किया है। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि मेरे पत्र का सम्मान करके आपने मेरी भी प्रतिष्ठा बचाई और क्षत्रियकुल की भी प्रतिष्ठा बचाई। पिता से मेरा मतभेद हो गया था। वे बहिन का विवाह उस ग्वाले के साथ करना चाहते थे, परन्तु मैं यह कैसे होने दे सकता था! यदि ऐसा हो जाता तो क्षत्रियों की नाक कट जाती। मैंने पिता की बात का विरोध तो किया था, परन्तु यदि आप मेरी बात न मानते तो मेरा वह विरोध

भी निरर्थक ही होता । आज मैं अपने को धन्य मान रहा हूँ। आपने पूरी तरह मित्रता निभाई और पधारकर मेरा घर पवित्र किया; नही तो कहाँ आप और कहाँ मै तुच्छ ! मेरे यहाँ आप पधारे, यह सद्भाग्य कहाँ !

इस प्रकार रुक्म ने शिशुपाल की खूब प्रशंसा की। अपनी प्रशंसा सुन-सुन कर शिशुपाल प्रसन्न हो रहा था। रुक्म द्वारा की गई प्रशसा के उत्तर मे वह भी रुक्म की प्रशसा करने लगा। वह भी कहने लगा कि—आप क्षत्रियकुल-भूषण है। आपने इस समय क्षत्रियजाति को कलकित होने से बचाया है और वह भी विरोधों को सह कर ! आपके बुलाने से आकर मैंने कोई प्रशसनीय कार्य नही किया है। मेरे लिए आप तो इतना विरोध सहें और मै इतना भी नही करूँ ! फिर मित्रता का परिचय देने का समय ही कौन-सा होता ? आपने जिस कार्य का पक्ष लिया, उसमे सहायता करना मेरा साधारण कर्तव्य है ऐसा विचारकर ही मैंने—विवाह करने की आवश्यकता न होने पर भी—आपका भेजा हुआ टीका स्वीकार कर लिया !

रुक्म तथा शिशुपाल परस्पर प्रशंसा करते हुए कुन्डिनपुर आये। बारात तथा अगवानी के लिए रुक्म के साथ गये हुए लोग भी कुन्डिनपुर आये। कुन्डिनपुर के नर-नारी बारात देखने के लिए उमड़े पड़ते थे। राजपरिवार की स्त्रियाँ भी महल की छत पर से बारात देखकर बारात की प्रशसा कर रही थी और रुक्मिणी के भाग्य को सराह रही थी; परन्तु

रुक्मिणी अपने महल में उदास बैठी थी। उसे किंचित् भी प्रसन्नता न थी। रुक्म ने सुन्दर सजे हुए महल मे शिशुपाल को व साथ के राजा आदि को यथा योग्य स्थान पर उतारा और खान-पान आदि की समुचित व्यवस्था करके स्थान-स्थान पर अपनी ओर से सेवक नियुक्त कर दिये। रुक्म के सुप्रबन्ध से शिशुपाल और उसकी बारात को बहुत सन्तोष हुआ।

शिशुपाल रुक्म के सद्व्यवहार और उसकी नम्रता की बार-बार सराहना करता था। वह कहता था कि अच्छा हुआ जो मैने ज्योतिषी, भावज या नारद की बात नही मानी। यदि उनकी बात मानकर मै कुन्डिनपुर न आता तो मुझे ऐसा सम्बन्धी कैसे मिलता! उस दशा मे तो मै ऐसे श्रेष्ठ सम्बन्ध से वचित ही न रहता, अपितु रुक्म को अपना शत्रु बना लेता और एक क्षत्रिय-कन्या का ग्वाले के हाथ पड़ने का कारण भी बनता!

रुक्म और शिशुपाल में फिर बाते होने लगी। रुक्म कहने लगा कि आपको मैने विवाह-तिथि से इतने दिन पहले बुलाना इसलिए आवश्यक समझा कि पिताजी विवाह कार्य से तटस्थ हैं बल्कि असहमत है। सम्भव है कि वे उस ग्वाल को किसी प्रकार का सन्देश भेज दें या वह ग्वाल स्वय ही निर्लज्जता-पूर्वक यहाँ आ जाये तो विघ्न हो जायेगा। अब आपके आ जाने से किसी को विघ्न करने का दु:साहस नही हो सकता। कदाचित वह ग्वाला आ भी गया तो मेरी और आपकी सम्मिलित शक्ति के सन्मुख उसे आत्मसमर्पण करना पड़ेगा।

शिशुपाल—हाँ, आपने बहुत बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम लिया है। यदि वह ग्वाल यहाँ आ जाये तो मुझे आपकी वहिनरूपा लक्ष्मी के साथ ही विजयलक्ष्मी भी प्राप्त होगी और कृष्ण के मारे जाने से या अधीन होने से महाराज जरासन्ध का भी प्रेम बढ़ेगा। आपने मुझे पहले बुलाकर बड़ा अच्छा किया। मै अपने साथ सेना भी ऐसी लाया हूँ कि जो एक बार मृत्यु से भी युद्ध कर सकती है। मेरे अजेय योद्धाओं के सन्मुख वह ग्वाल तो चीज ही क्या है! आप किंचित् भी भय या सन्देह मत रखिये और विवाह की तैयारी कराइये।

रुक्म—विवाह की तो सब तैयारी है केवल वहिन का मस्तिष्क किसी ने बिगाड़ दिया है, इसलिये उसने तेल नहीं चढवाया है, परन्तु यह कोई चिन्ता योग्य बात नही है। विवाह-तिथि अभी दूर है, इसलिए मैंने वहिन पर किसी प्रकार दवाव नही डाला, न उसे समझाया ही। मेरा विश्वास है कि अब वह आपको और आपकी बारात को देखकर प्रसन्नता-पूर्वक तेल चढवाना स्वीकार कर लेगी। मेरी सम्मति है कि आप अपनी बारात को एक बार जुलूस के रूप मे नगर में निकालियें, जिससे नगर के नर-नारी भी आपको तथा बारात को देख लें और वहिन भी देख ले।

रुक्म की यह बात सुन कर शिशुपाल के हृदय को एक धक्का-सा लगा। अपने साथ विवाह करने के लिये रुक्मिणी को असहमत जानने के पश्चात उसे उचित तो यह था कि वह रुक्म की बात अस्वीकार कर देता और कह देता कि

जब आपकी वहन मुझे नही चाहती तब उसको पाने के लिए मै किसी प्रकार की चेष्टा क्यो करूँ ? जिस प्रकार द्रौपदी के स्वयवर में कर्ण ने धनुष उठा कर चढ़ा भी लिया था और राधावेध करने की शक्ति भी रखता था, फिर भी द्रौपदी को अपनी पत्नी बनने के लिये असहमत देखकर दुर्योधन की बहुत प्रेरणा होने पर भी उसने राधावेध नही किया था। उसी प्रकार शिशुपाल का भी कर्तव्य था कि वह भी रुक्मिणी को पाने की चेष्टा न करता किन्तु घर लौट जाता । लेकिन धर्म और नीति को तो वह पहले ही पददलित कर चुका था । वह चन्देरी मे ही रुक्मिणी की असहमति जान चुका था, यदि उसे रुकना होता तो वही रुक जाता । परन्तु उसने स्त्रियों को अपने भोग की सामग्री मान रखी थी और इस कारण वह स्त्रियों की इच्छा की अपेक्षा करना उसी प्रकार अनावश्यक समझता था, जिस प्रकार मासाहारी लोग पशु-पक्षी की इच्छा की अपेक्षा नही करते ।

रुक्म की बात के उत्तर में शिशुपाल ने पूछा—आपकी वहिन ने अभी तेल नही चढवाया है ?

रुक्म—हाँ ! जान पड़ता है कि वह पिताजी के वह-काने मे लग कर ही उस ग्वाल को चाहती है ।

शिशुपाल—मैं आपके कथनानुसार बारात का जुलूस तो निकालूगा ही, परन्तु यदि इस कार्य का कोई यथेष्ट परि-णाम न निकला तो ?

रुक्म—न निकले ! फिर बलप्रयोग का उपाय तो है

ही। एक कन्या की ताकत ही क्या है ! मैंने आपको व्यर्थ ही नही बुलाया है, न आप व्यर्थ ही वारात सजाकर आये है। परन्तु कोई काम जब तक सुगम उपाय से हो जाये तब तक उसके लिए किसी कठिन उपाय का अवलबन लेना उचित नही है।

शिशुपाल—हाँ ठीक है। अच्छा अब मैं जुलूस की तैयारी कराता हूँ।

हाँ आप तैयारी कराइये, कह कर रुक्म शिशुपाल के पास से अपने घर आया। उसके मन में रुक्मिणी को किस प्रकार समझाया जाये ! यह समस्या उथल-पुथल मचा रही थी। उसने जाकर अपनी माता से कहा कि अभी अपने महल के नीचे से वर सहित बारात निकलेगी ! आप रुक्मिणी को गोखड़े से वर का दर्शन कराये और वारात दिखाये। शायद वर और बारात देखकर रुक्मिणी का विचार पलटे। रुक्म की माता ने रुक्म के कथनानुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया।

उधर रुक्मिणी के हृदय मे अपार चिन्ता हो रही थी। उसे विचार हो रहा था कि मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कैसे होगी ! पापी शिशुपाल बारात लेकर आ गया है, भाई और माता उसके साथ बलात् मेरा विवाह करने को उतारू हैं और मैं अकेली असहाया तथा अबला हूँ ! यद्यपि मैंने जिन्हें अपना पति मान है, उन श्रीकृष्ण को मेरी रक्षा करनी चाहिये, परन्तु वे द्वारका मे बैठे हैं। मेरे प्रेम और मुझ पर आई हुई विपत्ति की उन्हे खबर भी है या नही, यह भी नही मालूम। नारद मेरे

में कृष्ण के प्रति प्रेम तो उत्पन्न कर गये, परन्तु फिर उन्होने भी मेरी खबर नही ली। न जाने क्या होना है! मैं इसी शरीर में कृष्ण से मिल सकूगी या मुझे अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये यह शरीर त्यागना पड़ेगा! हे नाथ, हे द्वारकाधीश क्या आप मेरी रक्षा न करेंगे! क्या मै इस शरीर मे रहती हुई आपका दर्शन न कर सकूगी!

इस प्रकार विचारती हुई रुक्मिणी अपनी आँखो से आसू की बूदे टपकाने लगी। उसे धैर्य देनेवाला भी कोई न था। केवल उसकी एक भुआ ही सहायिका थी, परन्तु वह भी रुक्म के भय से प्रगट मे रुक्मिणी की कोई सहायता न कर पाती थी। फिर भी समय-समय पर वह रुक्मिणी को धैर्य बधाया करती। रुक्मिणी की मर्मपीड़ा सुनने-समझने वाली केवल भुआ ही थी। इस बार भी वह रुक्मिणी को समझाने लगी। वह कहने लगी—रुक्मिणी, तू इस प्रकार क्यों घबराती है, जरा धैर्य तो रख! अभी तो विवाह के कई दिन बाकी है! इतने समय में क्या नही हो सकता और क्या हो जायेगा, यह कौन जानता है। तेरा कृष्ण-प्रेम यदि सच्चा है तो वह कृष्ण को आकर्षित किये विना कदापि नही रह सकता। तू यह मत समझ कि वे दूर हैं, इसलिए मेरी सहायता न कर सकेंगे। उनका गरुड़ध्वज रथ वात-की-वात में उन्हे कही-से-कही पहुँचा सकता है। उन्हें तेरे प्रेम और तेरी प्रतिज्ञा की खबर न हो, यह भी नहीं हो सकता! नारद ने केवल तेरे में ही कृष्ण-प्रेम उत्पन्न नही किया है किन्तु अवश्य ही कृष्ण में भी तेरे प्रति प्रेम

उत्पन्न किया होगा । शिशुपाल बारात लेकर आयेगा, यह भी वे जानते होंगे । उनसे कोई बात छिपी न होगी । ऐसा होते हुए भी वे अब तक क्यो नही आये, या उनकी ओर से किसी प्रकार का सदेश भी क्यों नही आया, यह मै नही कह सकती । सच्ची बात तो यह है कि तेरी ओर से भी तो उनके पास किसी प्रकार का सदेश नही पहुँचा है । तेरे प्रेम को जानते हुए भी तेरी ओर के सदेश विना व्यवहार की पूर्ति नही होती और वे महापुरुष लोक-व्यवहार की अवहेलना कैसे कर सकते है । इसलिये मै समझती हूँ कि तेरी ओर से कृष्ण के पास प्रेम-प्रार्थना जानी चाहिये ।

भुआ के आश्वासन से रुक्मिणी को कुछ धैर्य हुआ । वह भुआ की अंतिम बात पर विचार करने लगी । इतने ही मे शिशुपाल की बारात धूमधाम से राजमहल के पास आई । बारात के हाथी, घोडे, रथ, पैदल सुसज्जित थे और व्यवस्थित रूप से क्रमवार चल रहे थे । शिशुपाल एक खूब संजे हुए हाथी पर बैठा था । उसके ऊपर छत्र लगा हुआ था और चवर ढुल रहे थे ।

राज-परिवार की स्त्रियाँ तथा नगर की स्त्रियाँ छतो पर चढकर बारात देखने लगी और बारात तथा शिशुपाल को देखकर रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करने लगी । रुक्मिणी की माता भी बारात एव शिशुपाल को देखकर बहुत प्रसन्न हुई । वह रुक्म की सराहना करती हुई कहने लगी कि रुक्म के प्रयत्न से ही यह बारात आई है और रुक्मिणी को

ऐसा वर मिला है, नही तो ग्वालों की वारात आती और ग्वाल ही रुक्मिणी का वर होता। उसने रुक्मिणी की सखियों को आज्ञा दी कि रुक्मिणी को वुला लाओ, जिससे वह भी यह सुन्दर वारात देखकर नेत्र सफल कर ले।

रुक्मिणी की माता की आज्ञा से रुक्मिणी की सखियाँ रुक्मिणी को वुलाने गई। यद्यपि वे रुक्मिणी का विचार जानती थी, फिर भी प्रयत्न करना और रुक्मिणी की माता की आज्ञा मानना उनके लिए आवश्यक था। वे रुक्मिणी के पास जाकर उससे कहने लगी—वहिन रुक्मिणी, तू अभी तक मुर्झाई हुई ही है। कही चन्द्र के उदय होने पर भी कुमुदिनी मुर्झाई हुई रहती है! उठो, जल्दी उठो, जरा देखो तो सही कि महल के नीचे कैसी वारात आई है! हमने तो आज तक ऐसी विशाल और अनुपम वारात न देखी है, न सुनी है। वारात के मध्य हाथी पर विराजमान चँवर-छत्र से सुशोभित महाराज शिशुपाल को देखकर सव लोग तुम्हारे भाग्य की सराहना कर रहे हैं और तुम इस प्रकार उदास हो! लो उठो, चलो, महारानीजी तुम्हे वुला रही हैं। विलम्व मत करो, नही तो वारात आगे वढ़ जायेगी और फिर भली प्रकार न देख सकोगी।

सखियों की वात के उत्तर में रुक्मिणी कहने लगी—सखियो क्या तुम निपट ही वुद्धिहीन हो! मैं तुम्हें अपना निश्चय सुना चुकी, फिर भी तुम इस प्रकार की वाते कर रही हो! तुम चन्द्र और कुमुदिनी का उदाहरण तो दे रही हो

परन्तु क्या यह नही समझती कि चन्द्रोदय पर कुमुदिनी आप ही विकसित हो उठती है, किसी की प्रेरणा की प्रतीक्षा नहीं करती । प्रेरणा तो तभी करनी पड़ती है, जब किसी तारे को चन्द्र वता कर उसके लिए कुमुदिनी को विकसित करने की इच्छा हो । परन्तु प्रेरणा करने पर भी तारे के लिए कुमुदिनी विकसित नही होती और चन्द्र के लिए आप ही विकसित हो जाती है । मेरा चन्द्र अभी उदय नही हुआ है । जब वह उदय होगा, तब कुमुदिनी की तरह मै भी आप ही विकसित हो जाऊँगी, उदास न रहूँगी । तुम जाओ । मैं कही न चलूगी । यह बारात तो क्या, यदि स्वय इन्द्र भी दूल्हा बना हुआ हो और देवता लोग उसके बराती हों तो मैं वह बारात भी उस दशा में कदापि न देखूगी, जब कि वह बारात किसी कन्या के अधिकारो का अपहरण करने के लिए सजाई गई हो ।

रुक्मिणी का उत्तर सुन कर सखियाँ वहाँ से चली गई । उन्होने पूर्व-अनुभव के कारण रुक्मिणी से अधिक कुछ कहना उचित न समझा । रुक्मिणी ने जो उत्तर दिया था, रुक्मिणी की सखियों ने वह रुक्मिणी की माता को जा सुनाया । रुक्मिणी की माता दौड़ी हुई रुक्मिणी के पास आई । वह कहने लगी—रुक्मिणी, तू बड़ी हठीली हो गई है । चल, जरा देख तो सही कि कैसी निराली बारात है । उस बारात के मध्य चन्देरीराज ऐसे शोभायमान हो रहे है, जैसे तारागण के मध्य चन्द्र । स्वर्णाभूषण से अलंकृत श्याम हाथी पर चँवर-छत्र के नीचे बैठे हुए महाराज शिशुपाल श्याम घटा को चीर कर

निकले हुए चन्द्र की तरह शोभा दे रहे हैं। ससार मे न तो ऐसा सुदर दूसरा पुरुष ही है और न इस प्रकार की बारात ही किसी के यहाँ आई होगी। तूने तेल नही चढवाया तो न सही और तुझे विवाह नही करना है तो मत कर, परन्तु चल कर एक बार नेत्रों का सुख तो ले ले। वर और बारात को तो देख ले। बारात देखने के लिए लोग दूर-दूर से आये है और तू यहाँ रहती हुई भी बारात देखने से क्यों वचित रहती है? चल उठ !

माता की बाते रुक्मिणी को बहुत ही कर्णकटु प्रतीत हो रही थी। वह इन बातों को अनिच्छा पूर्वक सुन रही थी। माता की बात समाप्त होने पर रुक्मिणी कहने लगी— माता, तुम मुझे किसका मुँह दिखाना चाहती हो? वह भी किसलिए? इसलिए कि मैं उसे पसन्द कर लू। उसे अपना पति बनाना स्वीकार कर लू! माता, तुम्हारे मुख से इस प्रकार की बाते शोभा नही देती। मैं अपना विचार आपको पहले ही सुना चुकी हूँ। मेरे वर श्रीकृष्ण है। मै पति रूप मे तो श्रीकृष्ण को ही देखूगी, किसी दूसरे का मुँह पति बनाने की इच्छा से कदापि नही देख सकती। शिशुपाल चाहे सुन्दर हो, रत्नाभूषण पहने हो, राजाओ के साथ हो तथा हाथी पर चढ कर आया हो, तब भी मैं उसका स्वागत नही कर सकती और कृष्ण चाहे काले भी हों, कम्बल ही ओढे हो, दीन दुःखियो के साथ हो तथा पैदल ही हो, तब भी मै उनका स्वागत करूगी। उनके लिए अपनी आँखो के पाँवड़े बिछा दूगी। उन्हें अपने

हृदय-मन्दिर में ठहराऊंगी । माता, मुझे शिशुपाल से किसी प्रकार का द्वेष नही है। ससार में अनेक पुरुष है, मै किसी से द्वेष मान कर उसकी निन्दा करूँ भी क्यों ! मैं शिशुपाल की निन्दा न करती, परन्तु वह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा पति बनने के लिए आया है, एक कन्या पर अत्याचार करना चाहता है, कन्या के अधिकारो को पददलित करना चाहता है, कन्याओं को अपने भोग की वस्तु मान कर उन्हे पशु या जड़ पदार्थ की तरह समझता है, अपने सुख के लिए उनका जीवन नष्ट करना चाहता है, इसलिए मेरे समीप वह धिक्कार का पात्र है । मैं उसे कुत्ते और कौए के समान ही मानती हूँ, जो दूसरे का जूठा खाने के लिए लालायित रहता है । मेरे हृदय को श्रीकृष्ण ने जूठा कर दिया है और यह बात उसे मालूम भी हो चुकी है, फिर भी वह कुत्ते और कौए की तरह निर्लज्ज बन कर उसे लेने के लिए आया है । लेकिन उसे यह बात विस्मृत न होनी चाहिए कि अनेक प्रयत्न करने पर भी कौआ राजहसी को अपनी पत्नी बनाने मे सफलता नही पा सकता । अनेक कष्टों मे पडने पर भी राजहसी अपने को कौए के समर्पण नही कर सकती । पतिव्रता की भी यही बात है । पतिव्रता स्त्री भी प्राण रहते किसी दूसरे पुरुष को पतिरूप कदापि स्वीकार नही कर सकती । मैने श्रीकृष्ण को अपना पति बना लिया है । यदि वे शरीर से न भी मिले, तो मेरे हृदय मे तो बसे ही है । मै अपना जीवन उन्ही के नाम पर व्यतीत कर दूगी, लेकिन इस जन्म मे दूसरा पति कदापि

स्वीकार न करूंगी। माता, जिस मुख से अमृत पिया, उसी मुख से विष कैसे पी सकती हूँ। जिस मुख से श्रीकृष्ण को पति कहा, उसी मुख से दूसरे को पति कैसे कह सकती हूँ! एक को पति मान कर फिर दूसरे की ओर मन ललचाना गंगा का जल तज कर गटर का जल पीने के समान है! कौन मूर्ख गंगा का जल छोड़ कर गटर का जल पियेगा! जिसने गंगाजल पी लिया उसे गटर का जल कब अच्छा लग सकता है! जो हाथी पर बैठा हुआ है, उसे गधे की सवारी कब पसन्द आ सकती है। इसी प्रकार जो श्रीकृष्ण की पत्नी बन चुकी है, उसे शिशुपाल की पत्नी बनना कब अच्छा लग सकता है। कदाचित मैंने ऐसा किया भी, अर्थात् श्रीकृष्ण को पति मानने के पश्चात् शिशुपाल को पति मान लिया तो मेरी गणना किन स्त्रियों में होगी? क्या फिर मैं पतिव्रता रह सकती हूँ? क्या मेरा यह कृत्य एक आर्यबाला के लिए शोभनीय होगा? और फिर क्या आप एक कुलटा स्त्री की माता न कहलायेंगी? आप शिशुपाल को चन्द्र के समान बताती हैं, परन्तु यह आपका भ्रम है। शिशुपाल को चन्द्र की उपमा देना, चन्द्र का अपमान करना है। वास्तव में शिशुपाल चन्द्र के समान नहीं है, किन्तु वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाले जुगनू के समान है, जो सूर्योदय से पूर्व तो खूब चमचमाते हैं, परन्तु सूर्योदय होने पर न मालूम कहाँ छिप जाते हैं। कृष्णरूपी सूर्य के सन्मुख शिशुपाल जुगनू निस्तेज होकर भाग जायेगा। माता मैं किसी के रूप-लावण्य, धन-

वैभव या बल-पराक्रम पर रीझ कर अपना ध्येय भुलानेवाली नही हूँ। मै अपनी प्रतिज्ञा से किसी भी समय और किसी भी अवस्था मे विचलित नही हो सकती। कदाचित सुमेरु भी आकर मुझ से कहे कि मै भी अपने स्थान से डिग जाता हूँ, इसलिये तू भी अपनी प्रतिज्ञा से डिग जा, तो मै उससे यही कहूँगी कि तू जड है और मै चेतन हूँ। तू डिग सकता है, मै नही डिग सकती। गगा और यमुना भी कहे कि हम भी उलटी बहेगी, तो मै उनसे भी कह दूगी कि तुम चाहे उलटी बहो परन्तु मै अपना भाव नही बदल सकती। यदि समस्त दु ख और मृत्यु तक भी मुझे भयभीत करने आये तो मै उनके आघात को प्रसन्नता पूर्वक सह लूगी परन्तु अपना निश्चय न त्यागूगी। और तो और स्वय श्रीकृष्ण भी आकर कहे कि अपना निश्चय बदल दे, तो मै उनसे भी कहूँगी कि आप मुझे आपके द्वारा प्राप्त होने वाले सासारिक सुखो से वचित कर सकते है परन्तु मेरे धर्म से पतित नही कर सकते। माता इस से अधिक और क्या कहूँ ! मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुकी। अब इस विषय मे आपका भी मुझसे और कुछ कहना व्यर्थ है।

रुक्मिणी के उत्तर से रुक्मिणी की माता बिलकुल ही निराश हो गई। उसका साहस रुक्मिणी से अधिक कुछ कहने का न हुआ। उसे अपने कार्य पर अत्यधिक पश्चताप हो रहा था। वह रुक्मिणी के पास से ऐसी उदास होकर चली गई जैसे गाँठ से कुछ गिर गया हो।

उधर शिशुपाल की बारात कुछ देर तक राजमहल के सामने अपना प्रदर्शन करती रही और फिर आगे बढ़ गई। शिशुपाल अपने हृदय में विचारता था कि मेरी बारात को और मुझको देखकर रुक्मिणी अवश्य ही आकर्षित हुई होगी। वह क्या जाने कि मेरा यह प्रदर्शन उसी प्रकार व्यर्थ हुआ, जैसे सूम के सामने भाँडों का नकल करना व्यर्थ है। बारात सहित शिशुपाल नगर में घूमकर अपने स्थान पर आया और रुक्मिणी के विषय में किसी शुभ समाचार की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगा।

शिशुपाल और उसकी बारात को स्थान पर पहुँचाकर रुक्म माता के महल में आया। उसको आशा थी कि इस बार माता मुझे जाते ही यह सुनायेगी कि रुक्मिणी ने शिशु-पाल के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया हैं; लेकिन माता को देखते ही उसकी आशा निराशा में परिणत हो गई। माता की उदास आकृति से वह समझ गया कि रुक्मिणी ने अपना निश्चय नहीं बदला है। रुक्म के पहुँचते ही रुक्म की माता ने रुक्मिणी का उत्तर सुनाया। रुक्मिणी का उत्तर सुन कर रुक्म क्षुब्ध हो उठा। वह कहने लगा कि रुक्मिणी का साहस इतना अधिक बढ़ गया है। मैं सोचता था कि वह सीधी तरह समझ जाये तो अच्छा है, परन्तु वह तो और अकड़ती ही जा रही है। देखता हूँ वह शिशुपाल के साथ कैसे विवाह नहीं करती है! मैं बल-पूर्वक उसे शिशुपाल के साथ विवाह दूगा!

इस प्रकार बकझक कर रुक्म क्रोध करता हुआ माता

के पास से चला गया। वह विचारने लगा कि इस समस्या को किस तरह हल किया जाये। बारात आई हुई है, परन्तु जिस का विवाह है, उस पर तेल तक नही चढा, यह कितनी लज्जा की बात है! मैं अपने मित्र शिशुपाल को क्या मुंह दिखाऊ! उन्होने तो मेरी बात स्वीकार की और मै अपनी कही बात का पालन करने मे ही असमर्थ हूँ।

रुक्म शिशुपाल के पास आया कि शिशुपाल रुक्म की प्रतीक्षा में ही था, परन्तु वह जो परिणाम सुनने की आशा लगाये बैठा था, रुक्म ने उससे उल्टा परिणाम सुनाया। शिशुपाल ने रुक्म से पूछा—कहो मित्र क्या समाचार है? आपके अनुमान के अनुसार अब तो आपकी बहिन का विचार बदल गया होगा और अनुकूल हुआ होगा।

रुक्म—नही, अभीष्ट परिणाम नही निकला। बहिन को किसी ने इस प्रकार बहकाया है कि उसका ढङ्ग ही कुछ और हो रहा है। कुछ समझ मे नही आता कि उसे क्या हो गया है। मेरी समझ में तो वह नारद के बहकाने में लगी है, दुष्ट नारद एक बार यहाँ आया था। मालूम हुआ है कि उसी ने कृष्ण की झूठी प्रशसा सुना कर रुक्मिणी को कृष्ण की ओर आकर्षित किया है।

शिशुपाल—क्या नारद यहाँ भी आया था? वह बड़ा ही धूर्त है। उसने चंदेरी आकर भी कहा था कि तुम कुन्डिनपुर मत जाओ। उसने मेरे को कुन्डिनपुर जाने मे बहुत भय दिखाया था परन्तु उसकी धूर्तता मेरे आगे कैसे चल

सकती थी ! मैंने उससे उसी समय कह दिया कि आप यह लीला कहीं और फैलायें ! उस धूर्त की बात मानने वाला अपना ही सर्वनाश कर लेता है। आश्चर्य नहीं कि वह उस ग्वाले के पास भी गया हो और उससे कुछ और ही कहा हो।

रुक्म—सम्भव है, लेकिन यदि वह ग्वाला नारद के कहने मे पड़कर कुण्डिनपुर आया तो निश्चय ही पृथ्वी से उसका अस्तित्व उठ जायेगा। फिर भी अपने को सावधानी रखने की आवश्यकता है। कही उसने अपने को खबर न होने दी और महल के लोगों से मिलकर कोई षड्यंत्र रचा तो अपनी सेना और वीरता धरी ही रह जायेगी। वह कपटी बड़ा ही नीच है। वह छिपकर नगर में न आ सके, इसका प्रबंध करना चाहिए। मेरी समझ से नगर के आसपास सेना का घेरा डाल दिया जाये, जिससे कोई आदमी छिपकर बाहर से न आ सके। विवाह के दिन तक इसी प्रकार की सावधानी रखने की आवश्यकता है। तब तक मेरी बहिन को समझाने की चेष्टा करूँगा और यदि मेरे समझाने पर भी न मानी तो फिर विवाह के दिन उसे बलपूर्वक आपके साथ विवाह दूंगा। अपने सामने एक लड़की का क्या साहस हो सकता है !

शिशुपाल—हाँ, यह ठीक है। मैं अभी मेरी सेना को आज्ञा देता हूँ कि वह चारो ओर से नगर को घेर ले और बिना मेरी या आपकी आज्ञा के न तो कोई नगर से बाहर जा सके, न बाहर से नगर में ही आ सके।

रुक्म—महल की रक्षा के लिए मैं अपनी सेना नियुक्त

कर दूगा और महल में ऐसे गुप्तचर भी रख दूगा जो प्रत्येक बात पर दृष्टि रखे ।

शिशुपाल—यह भी ठीक है । इस ओर से सावधानी रखने की बहुत आवश्यकता है, अन्यथा कोई दुर्घटना होने पर मेरी और आपकी बडी हँसी होगी । ससार मे मुँह दिखाने योग्य भी न रहेगे ।

शिशुपाल ने अपनी सेना को कुन्डिनपुर घेर लेने की आज्ञा दी । उसने सैनिको को सावधान भी कर दिया कि कोई भी मनुष्य रुक्म या मेरी आज्ञा विना न तो नगर में आने ही पाये, न नगर से बाहर ही जाने पाये । शिशुपाल की आज्ञानुसार समस्त सेना ने सारे नगर को घेर लिया । नगर के प्रधान-प्रधान द्वार पर बड़े बड़े योद्धा नियुक्त कर दिये गये । नगर का आवागमन रुक गया । रुक्म ने भी राजमहल के चारो ओर सशस्त्र सैनिक नियुक्त कर दिये और उन्हे सावधान रहने के लिये सूचित कर दिया । महल के भीतर भी अनेक गुप्तचर रख दिये जो प्रत्येक बात का पता रखने लगे । इस प्रकार का प्रवन्ध करके शिशुपाल और रुक्म विवाह के मुहूर्त वाले दिन की प्रतीक्षा करने लगे ।

८ : पत्र लेखन

सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित् क्रियते परे ।
यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मिनि तद्भवेत ।।

अर्थात्—दूसरे के लिये किया हुआ किंचित् भी सुख-दुःख अपने आत्मा में ही उत्पन्न होता है । यानी दूसरे को दिया हुआ सुख-दुःख अपने को ही प्राप्त होता है ।

किसी भी प्राणी को असहाय या असमर्थ समझ कर सताना महान अन्याय है । ऐसा करना प्राप्त बल या सत्ता का दुरुपयोग करना है । बल्कि अपने बल और अपनी सत्ता को अपना ही नाश करने में लगाना है । चाहे वह असहाय या निर्बल अपने पर होने वाले अन्याय का प्रत्यक्ष प्रतिकार भी न कर सके, अन्यायी को प्रतिफल न भी भुगता सके, लेकिन ऐसे निर्बल या असहाय की सहायता कोई गुप्त शक्ति अवश्य ही करती है और वह शक्ति उस अन्यायी को उसके अन्याय का फल अवश्य देती है । उस गुप्त शक्ति को चाहे ईश्वरीय-शक्ति कहा जाय या कर्मशक्ति, परन्तु दीन, दुःखियों और निर्बल पर अत्याचार करनेवाला अपने अन्याय का प्रतिफल भोगने से कदापि नहीं बच सकता । ध्वनि से प्रतिध्वनि और आघात से प्रत्याघात का उत्पन्न होना प्राकृतिक नियम है । फिर चाहे

प्रकृति इस नियम का उपयोग शीघ्र करे या देर से, लेकिन करती अवश्य है। यही बात अन्याय और अत्याचार की भी है। दूसरे पर अन्याय, अत्याचार करने वाला थोड़ी देर के लिए अपने को चाहे बड़ा मान ले, थोड़ी देर के लिए चाहे अभिमान कर ले और थोडी देर के लिए अपने को भले सुखी समझ ले लेकिन जब उसे अपने द्वारा किये गये अन्याय का प्रतिफल भोगना पड़ता है तब उसका बड़प्पन, अभिमान और सुख स्वप्न-सम्पदा के समान विलीन हो जाता है। फिर वह अपने को महान कष्ट मे अनुभव करता है। उसके पश्चाताप की सीमा नही रहती।

ससार मे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक निर्बल मानी जाती हैं। स्त्रियों ने चाहे स्वय ही अपने आपको निर्बल बना रखा हो या वे वास्तव में निर्बल ही हों, परन्तु उनकी गणना है निर्बलों मे ही। इसीसे वे अबला कही जाती है। निर्बल होने के कारण स्त्रियाँ पुरुषों के लिए दया-पात्र मानी जानी चाहिये लेकिन अनेक दुष्ट दुराचारी पुरुष अबला मानी जाने वाली स्त्रियों पर अत्याचार करने मे ही अपना पुरुषत्व मानते हैं। वे इस बात को तो भूल ही जाते है कि हम इन स्त्रिय पर जो अन्याय कर रहे है, उसका प्रतिफल हमे इस जन्म में या अगले जन्म में अवश्य भोगना पड़ेगा। स्त्रियाँ अपनी सहिष्णुता और क्षमा का परिचय देकर पुरुषों द्वारा होनेवाले अन्याय को सहती क्या है, वे पुरुषों के अन्याय के प्रतिफल को भयंकर बना देती है। चीटी से लेकर हाथी तक किसी भी जीव को सतानेवाला

अवश्य सताया जाता है, तो जो विनम्र अबला और जीवन भर अधीन रहने वाली स्त्रियों पर अत्याचार करता है वह इस नियम से कैसे बच सकता है ! रावण ने सीता पर अत्याचार किया था तो वह परिवार सहित नष्ट हो गया। दुर्योधन ने द्रौपदी को सताया था तो उसे भी रावण की ही भाति नष्ट होना पड़ा। कस ने देवकी को कष्ट दिया था तो उसे भी ऐसा ही परिणाम भोगना पड़ा। रुक्मिणी पर भी शिशुपाल अत्याचार करने को उतारू हुआ है। रुक्म भी रुक्मिणी के कन्योचित अधिकारो को पददलित करके उसे शिशुपाल के साथ बलात् विवाह देने को तैयार हुआ है; लेकिन सत्य पर दृढ रहनेवाली रुक्मिणी की भी कोई-न-कोई गुप्त-शक्ति अवश्य सहायता करेगी और शिशुपाल तथा रुक्म को उनके दुष्कृत्य का फल भी भोगना पड़ेगा।

अपनी माता के सामने रुक्म जो कुछ कह गया था, वह सब रुक्मिणी ने भी सुना। साथ ही उसे यह भी मालूम हुआ कि नगर और महल के आस-पास सैनिक पहरा लगा हुआ है। नगर का आवागमन भी बन्द हो गया है। इन सब समाचारो को सुनकर रुक्मिणी की चिन्ता बढती जा रही थी। उसका हृदय धैर्य नही रखता था। वह विचारती थी कि यदि दुष्ट भाई बलात् मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करने लगा तो मै प्राणनाश के सिवाय और क्या कर सकूगी ! ऐसी दशा में मै इस शरीर में रहती हुई तो कृष्ण का दर्शन कैसे कर सकती हूँ ! अब तो कृष्ण के दर्शन होने की कोई आशा भी

नही रही । क्योंकि एक तो कृष्ण दूर है । दूसरे, मै उनके पास अपनी प्रार्थना भेजू भी तो किसके द्वारा ! मेरी प्रार्थना कौन ले जायेगा ! कौन मेरा सहायक है ! भुआ के सिवा दूसरा कोई आश्वासन देनेवाला तक तो है नही, फिर प्रार्थना ले जानेवाला कौन हो सकता है । भुआ मेरी सहायिका अवश्य है, परन्तु मेरी ही तरह वे भी तो विवश हैं ! कदाचित भुआ के प्रयत्न से किसीने मेरी प्रार्थना द्वारकानाथ के पास पहुंचना स्वीकार भी कर लिया, तब भी वह नगर से बाहर ही कैसे निकल सकता है ! विवाह का दिन भी समीप ही है । इतने अल्प समय मे कैसे तो प्रार्थना पहुँच सकती है और कैसे श्रीकृष्ण आ सकते है ! मेरे लिए अब प्राणत्याग के सिवा दूसरा मार्ग ही नही है । दुष्ट शिशुपाल को भी यह विचार नही होता कि मैं अपने को वीर मानता हूँ तो एक कन्या पर अपनी वीरता क्या दिखाऊ । भाई तो मुझे शिशुपाल के साथ बलपूर्वक बिवाह देने के लिए तैयार ही है और माता भी उसी के पक्ष में है । पिता कृष्ण के साथ मेरा विवाह होने के समर्थक होते हुए भी दुष्ट पुत्र से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये तटस्थ हैं । कन्या को माता, पिता और भाई का ही बल होता है परन्तु मेरे लिए इनमे से कोई भी अनुकूल नही है । ऐसी दशा में प्राणत्याग के बिना मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कदापि नही हो सकती ।

इस प्रकार रुक्मिणी घोर चिन्ता-सागर में डूब रही थी । उसे कही किनारा नही दिखता था, न किनारे पर पहुँ-

चने का कोई साधन ही दृष्टि मे आता था। वह चुपचाप बैठी हुई आँखो मे आँसू गिरा रही थी। चिन्ता-मग्न रुक्मिणी की आँखों की पलकें भी नियमित रूप से नही गिरती थी। वह आँसू गिराती हुई पृथ्वी की ही ओर एकटक देख रही थी। जैसे वह अपने आँसुओ से पृथ्वी को तृप्त करके उससे कह रही हो कि—हे पृथ्वी तू सब को आधार देने वाली है, अत: मुझ निराधार को अपने मे स्थान दे! मुझे आश्रय देनेवाला तेरे सिवा और कोई नही है।

रुक्मिणी चिन्ता-सागर मे गोते लगा रही थी, इतने ही मे उसकी भुआ आ गई। रुक्मिणी को घोर चिन्ता मे देख कर भुआ कहने लगी—रुक्मिणी तू व्यर्थ ही क्यो चिन्ता करती है? अभी तो विवाह के दिन मे पर्याप्त विलम्ब है। इतने समय मे तो कुछ-का-कुछ हो सकता है।

रुक्मिणी—हाँ भुआ यह तो ठीक है, परन्तु हृदय तो धैर्य नही धरता! ऐसा कोई कारण भी नही है कि जिससे हृदय को कुछ सन्तोष हो। सब ओर निराशा-ही-निराशा दिखती है। विवाह का दिन तो अवश्य दूर है, परन्तु इतना दूर भी नही है कि कोई द्वारका जाकर फिर लौट आये। आप मुझसे श्रीकृष्ण के पास प्रेम-प्रार्थना भेजने को कहती थी, परन्तु अब तो वह मार्ग भी बन्द हो गया। पहले तो प्रार्थना ले ही कौन जाये! कदाचित कोई ले जाने को तैयार भी हो तो अब तो महल और नगर के चारो ओर सेना पड़ी हुई है! न तो कोई बाहर से आ ही सकता है, न बाहर जा ही सकता

है । ऐसी दशा में किस आधार पर धैर्य रखूं !

भुआ—रुक्मिणी सत्य और सच्चे प्रेम में बड़ी शक्ति होती है। वह शक्ति क्या नही कर सकती ! तू विश्वास तो रख ! सत्य न मालूम किसके हृदय में कैसी प्रेरणा करता है और सब मार्ग बन्द होने पर भी न मालूम किस ओर मार्ग कर सकता है ! तू मेरी बात मानकर कृष्ण को प्रार्थनापत्र तो लिख ! मेरा विश्वास है कि तेरा प्रार्थनापत्र किसी तरह कृष्ण के पास पहुँच जायेगा और कृष्ण ठीक समय पर आ कर तेरी रक्षा करेंगे ।

रुक्मिणी—आपकी आज्ञानुसार मै रात को एकान्त मे बैठ कर पत्र लिखूगी, दिन मे तो मेरे आसपास कोई-न-कोई बना ही रहता है ।

ठीक है, रात को लिखना, परन्तु चिन्ता छोड दे—कहकर भुआ रुक्मिणी के पास से चली गई । रुक्मिणी सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगी परन्तु उसके लिए उस दिन सूर्य भी निश्चल-सा हो गया था । अर्थात् रुक्मिणी के लिए शेष दिन बडी कठिनाई से बीता । रात होने पर रुक्मिणी कृष्ण को पत्र लिखने बैठी ।

कलम, दवात और कागज लेकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण को पत्र लिखने के लिये उद्यत हुई । परन्तु क्या लिखू, यह निश्चय न कर सकी । चिन्ता से अस्थिर हृदय किसी निश्चय पर नही पहुँचने देता था । रुक्मिणी ने बडी कठिनाई से हृदय स्थिर किया और वह श्रीकृष्ण को पत्र लिखने लगी । वह कलम से तो पत्र लिखती थी और आँखो से पत्र पर आँसू डालती थी ।

जैसे पत्र पर आँसू रूपी केसर के छींटे छिटकाकर श्रीकृष्ण को आमन्त्रण पत्र लिखा हो।

वड़ी कठिनाई से कांपते हुए हाथों रुक्मिणी ने कृष्ण को पत्र लिखा। उसने पत्र में लिखा—

हे प्राणनाथ, हे हृदय-सर्वस्व, मुझ अवला की रक्षा करो। मैं सव प्रकार असहाया हूँ। आपके सिवा मेरा कोई भी सहायक नही। नारद से आपका यश सुन कर मैंने आपको अपना स्वामी मान लिया है। मैं स्वयं को आपके समर्पण कर चुकी हूँ। मेरे लिए आपके सिवा ससार के समस्त पुरुष पिता और भ्राता के समान हैं। मेरी गति, मेरी साधना, मेरे आराध्य और मरे पति आप ही हैं। मैं इस शरीर मे रहती हुई आपके सिवा किसी दूसरे को कदापि पति नही मान सकती हूँ। दुष्ट भाई मेरी इस प्रतिज्ञा को तोड़ने पर उतारू है। उसने पिता की अवहेलना करके नीच शिशुपाल को वुलाया है। वह मुझ सिंहवधू को शृगालवधू वनाना चाहता है। पापी शिशुपाल वारात सजाकर मुझे पाने की आशा से उसी प्रकार दौड़ा आया है जिस प्रकार कुत्ते और कौए मृत पशु के मांस के लिए दौड़ जाते हैं। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ हूँ, परन्तु रुक्म और शिशुाल मुझ पर वल-प्रयोग करना चाहते है। उन्होंने मुझ कन्या के लिए सारे नगर को सेना से घेर रखा है। विवाह के लिए नियत तिथि को भाई मुझे वलपूर्वक शिशुपाल के साथ विवाह देना चाहता है। मेरी प्रतिज्ञा जान कर शिशुपाल

को भी कुछ विचार न हुआ। वह निर्लज्जता-पूर्वक मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध अपनी पत्नी बनाने के लिए उद्यत है। इस समय मेरा कोई भी सहायक नही है। गृह-कलह के भय से और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए पिता तटस्थ बैठे है। माता भाई की सहायिका है। इस प्रकार मेरे लिए सब ओर आपत्ति छाई हुई है। मुझे आश्रय देनेवाला आपके सिवा कोई नही है। मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि चाहे प्राण त्याग दू परन्तु कृष्ण के सिवा दूसरे को पति स्वीकार न करूँगी। अभी मैं आपकी सहायता की आशा से जीवित हूँ। यदि विवाह-तिथि तक भी आपने मेरी रक्षा न की तो दुष्ट भाई तथा पापी शिशुपाल सत्य, न्याय और वीरता के मस्तक पर पाँव रखकर मुझे अपने बल-प्रयोग का लक्ष्य बनायेंगे। उस दशा मे मेरे लिए शरीर-त्याग करना आवश्यक हो जायेगा। मै मरने से किंचित् भी भय नही करती हूँ, यदि भय है तो केवल यही कि मेरे मरने से उनके यश को कलङ्क लगेगा, जिन्हे मैं पति मान चुकी हूँ। आपके यश को कलङ्क लगे, यह मेरे लिए असह्य है। परन्तु आपकी ओर की सहायता के अभाव मे मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग ही नही है। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप पधार कर मेरी रक्षा करिये। अधिक क्या निवेदन करूँ! मेरे लिए एक दिन एक वर्ष के समान बीतता है। मेरे प्राण केवल आपके दर्शन की आशा के सहारे ठहरे है। आप शरणागत वत्सल है और मैं आपके शरण हूँ।

मेरी रक्षा करिये । मुझ पापिनी की उपेक्षा करने से आप का यश दूषित होगा । लोगों में सत्य और न्याय की श्रद्धा न रहेगी । अन्यायियों का साहस बढ़ जायेगा । इसलिये आप अविलम्ब कुन्डिनपुर पधारिये। विवाह-तिथि के पश्चात् आप मुझे जीवित न पा सकेंगे और फिर आपका कष्ट व्यर्थ होगा । अन्त मे मैं यही निवेदन करती हूँ:—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचर ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते ॥

अर्थात्—हे श्रष्ठ मेघ हम पापीहो के एक मात्र तुम्ही आधार हो, इस वात को कौन नहीं जानता ! फिर हमारे दीन वचन की प्रतीक्षा क्यों करते हो ?

इसके अनुसार मेरे केवल आप ही आधार है। मेरी करुण पुकार सुनकर तो मुझ पर कृपा करो ।

मैं हूँ आपकी दासी—
रुक्मिणी

रुक्मिणी ने जैसे-तैसे पत्र समाप्त किया । उसे अपना पत्र श्रीकृष्ण के पास पहुँचने की किंचित् भी आशा न थी, इसलिए उसने पत्र को तो एक ओर छिपा कर रख दिया और स्वयं भावी चिन्ताओ में उलझ कर पड़ी रही ।

सत्य की दृढ़ता मे विचित्र शक्ति होती है । वह शक्ति निराशा के वादलों में सूर्य की तरह आशा चमका देती है ! शत्रुओं के मध्य मित्र खड़ा कर देती है । अग्नि में शीतलता

उत्पन्न कर देती है अथवा समुद्र को उथला बना देती है। मतलब यह कि वह शक्ति सत्य पर दृढ रहने वाले की सहायता किसी-न-किसी रूप मे करती ही है। इसके अनेक उदाहरण भी हैं। लका मे रावण का राज्य था। वहाँ सीता को आश्वासन देने वाला कौन मिल सकता था! परन्तु सत्य की शक्ति से विभीषण मिल ही गया। वन में राम दो ही भाई थे, तीसरा कोई सहायक न था, परन्तु यहाँ भी वानर उनके अनुयायी बन गये। अर्जुन माली से और फांसी से सुदर्शन सेठ की रक्षा करने वाला कौन था! लेकिन रक्षा हुई ही। वस्त्र-हरण के समय द्रौपदी सब ओर से असहाय थी फिर भी वह नग्न नही हो सकी। उग्रसेन को बन्धन-मुक्त होने की आशा न थी परन्तु बन्धनमुक्त हो ही गये। वन मे वधिक से दमयन्ती की रक्षा करने वाला कोई न था लेकिन सत्य की दृढता के कारण साँप द्वारा उसकी रक्षा हुई। रुक्मिणी पर भी सकट है, उसे अपनी सहायता करने वाला—अपना पत्र ले जानेवाला—कोई नही दिखता है, लेकिन सत्य का रुक्मिणी की रक्षा करना स्वीकार है इसलिये उसने कुशल पुरोहित के हृदय मे रुक्मिणी की सहायता करने की प्रेरणा की ही।

कुन्डिनपुर मे कुशल नाम का एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। वह कुन्डिनपुर के राजपरिवार का पुरोहित और शुभ-चिन्तक था। वयोवृद्ध होने के साथ ही वह अनुभववृद्ध, चतुर और बुद्धिमान भी था। उसे रुक्मिणी के विवाह-सम्बन्धी सब हाल मालूम थे। वह जानता था कि रुक्मिणी श्रीकृष्ण को

ही चाहती है, शिशुपाल को नही चाहती, लेकिन रुक्म की सहायता से शिशुपाल रुक्मिणी को बलात् अपनी पत्नी बनाना चाहता है। सेना द्वारा सारे नगर और राजमहल को घेरने का कारण भी यही है, यह उसे ज्ञात था। वह समझता था कि यह रुक्मिणी के प्रति अत्याचार हो रहा है, परन्तु जब महाराज भीम जैसे भी तटस्थ है, तब मैं क्या कर सकता हूँ! यह विचार कर वह तटस्थ रीति से सब कुछ देख सुन रहा था।

कुशल अपने घर सो रहा था। आधी रात के समय सहसा उसकी नीद उचट गई। जैसे रुक्मिणी के पत्र ने स्वप्न समाप्त होने के साथ ही कुशल की नीद भी समाप्त कर दी हो। कुशल ने फिर नींद लेने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन फिर नीद न आई, सो न आई। रुक्मिणी विषयक घटनाओ को वह कई दिन से देख सुन रहा था; लेकिन उसके हृदय में कोई विशेष विचार न हुआ था। नीद उचट जाने के पश्चात् न मालूम किसकी प्रेरणा से कुशल विचार करने लगा कि—आजकल रुक्मिणी पर बड़ी विपत्ति है! उसकी सहायता करने वाला कोई नही है। उसने कृष्ण को अपना पति मान लिया है और उसकी प्रतिज्ञा है कि मै प्राण भले ही दे दू, परन्तु कृष्ण के सिवा दूसरे पुरुष की पत्नी न बनूंगी। इधर रुक्म और शिशुपाल की ओर से उस पर आपत्तियों की वर्षा हो रही है। कही रुक्मिणी को अपनी प्रतिज्ञा निबाहने के लिये प्राण न त्याग देना पड़े! यदि ऐसा हुआ तो बड़ा

अनर्थ होगा। मैंने इस राजपरिवार का अन्न खाया है इसलिये मेरा कर्तव्य है कि मैं रुक्मिणी की हत्या रोकने का उपाय करूँ! परन्तु रुक्म और शिशुपाल की तामसी शक्ति के सामने मेरा क्या वश चल सकता है। मैं क्या कर सकता हूँ। कुछ कर सकू या न कर सकू, कम-से-कम रुक्मिणी से मिल कर उसकी कुशलता तो पूछनी चाहिये! उसे सान्त्वना तो देनी चाहिये! इतना ही नही, किन्तु यदि वह मुझसे किसी प्रकार की सहायता चाहे तो मुझे अपने प्राणो का मोह त्याग कर उसकी सहायता भी करनी चाहिये! राजपरिवार के अन्न से पला हुआ यह वृद्ध शरीर राजकन्या की सत्य और न्यायानुमोदित सहायता में काम भी आ जाये तो इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है!

इस प्रकार विचार कर कुशल ने रुक्मिणी से मिलने का निश्चय किया। सवेरा होते ही वह राजमहल में आया। राजपरिवार के वृद्ध पुरोहित पर सन्देह करने या उसे रोकने का तो कोई कारण था ही नही, इसलिए वह सरलता से राजमहल में चला गया। राजपरिवार की स्त्रियो को आशीर्वाद देता हुआ और उनकी कुशलता पूछता हुआ कुशल रुक्मिणी के यहाँ आ गया। रुक्मिणी ने सदा की भाँति कुशल को प्रणाम किया। शुभाशीर्वाद देकर कुशल ने रुक्मिणी से पूछा—राजकुमारी आप इतनी दुर्बल और चितिन्त क्यों दिखाई देती हैं, आजकल तो आपका विवाह है, इसलिए प्रसन्नता होनी चाहिए थी एवं शरीर-सम्पदा भी समृद्ध होनी चाहिए थी,

परन्तु मैं तो इसके विपरीत देख रहा हूँ !

रुक्मिणी—महाराज, इसका कारण मुझसे पूछ रहे हैं ? क्या मुझ पर आई हुई विपत्ति को आप नही जानते हो ! इस शरीर में अब तक प्राण ही न मालूम क्यों ठहरे हुए है ! आश्चर्य नही कि आप कुछ दिन पश्चात इस शरीर को प्राणहीन ही देखे !

कुशल—मैं सब बातों से परिचित हूँ, परन्तु आत्महत्या तो कदापि न करना चाहिए !

रुक्मिणी—इसके सिवा धर्म-रक्षा का कोई उपाय भी तो नही है !

कुशल—धैर्य रखिये, आप जिसकी रक्षा चाहती है वह धर्म भी आपकी रक्षा करेगा ! यदि कोई ऐसा कार्य हो कि जिसे मैं कर सकता होऊँ तो आप कहिये । मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ ।

रुक्मिणी—वृद्ध पिता, मेरे वास्ते आप अपने प्राण सकट में डालने को तैयार मत होइये । इस समय मेरी सहायता करना रुक्म और शिशुपाल की क्रोधाग्नि में अपने प्राण समर्पण करना है ।

कुशल—आप इसकी चिन्ता मत करिये । सत्य और न्याय के लिये प्राणों का ममत्व त्याग देना ही धर्म है। इस शरीर का बलिदान ऐसे शुभ कार्य में हो जाये इससे बढ़ कर सौभाग्य की बात क्या होगी ! नीति में कहा है—

जातस्य नदी तीरे तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम् ।
यत् सलिल मज्जनाकुलजनहस्तावलम्बनं भवति ॥

अर्थात्—नदी किनारे पैदा हुए उस तिनके का भी जन्म सफल है जो जल मे डूबने से घबराये हुए का अवलंबन है ।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्तो वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥

अर्थात्—बुद्धिमान को चाहिए कि धन और प्राण दूसरे के हित मे उत्सर्ग कर दे । क्यो धन और शरीर का नाश तो अवश्य ही होगा, इसलिए दूसरे के हित में त्याग देना अच्छा है ।

राजकुमारी मुझे यदि ऐसा सुयोग प्राप्त हो तो मै उसे ठुकराने की मूर्खता कदापि न करूँगा । आप नि.संकोच होकर मेरे योग्य कार्य कहिये ।

कुशल की बात सुन कर रुक्मिणी के मुख पर प्रसन्नता झलक उठी । वह कहने लगी—प्रभो तुझे धन्य है ! तेरे पर विश्वास करके धर्म के नाम पर प्राणों को तुच्छ समझने वाले लोग भी संसार में हैं । सत्य की शक्ति प्रत्यक्ष है । सत्य अपने पर विश्वास करने वाले की सहायता करता ही है । इस समय मुझे कोई आश्वासन देनेवाला तक न था परन्तु सत्य की शक्ति को समझ कर ये वृद्ध पुरोहित अपने प्राणों का मोह त्याग मेरी सहायता के लिऐ आ खड़े हुए । सत्य तुझे धन्य है ! तेरे में अपार शक्ति है ।

रुक्मिणी की भुआ वही खड़ी हुई रुक्मिणी और कुशल की वातचीत सुन रही थी । उसने रुक्मिणी से कहा—रुक्मिणी

इन महाराज के द्वारा अपना प्रार्थनापत्र द्वारका क्यों नही भेज देती ?

रुक्मिणी—भुआ, जरा विचार तो करो, ये वृद्ध महाराज सेना के बीच से कैसे निकल सकेंगे और द्वारका कितने दिन में पहुँचेगे ? विवाह का दिन समीप ही है। इतने थोड़े समय में न तो ये महाराज द्वारका पहुँच ही सकते हैं, न द्वारका से श्रीकृष्ण ही यहाँ पहुँच सकते है। ऐसी दशा में इन्हे व्यर्थ ही सकट में डालने से क्या लाभ ?

भुआ—रुक्मिणी, तू सत्य का प्रत्यक्ष प्रभाव देख कर भी उसके विषय मे सन्देह कर रही है ! तू इन्हे पत्र तो दे ! सम्भव है कि तेरा पत्र समय पर श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाये और वे भी समय पर ही आ जाये।

रुक्मिणी से यह कह कर भुआ कुशल से कहने लगी—कुशल महाराज, यदि आप रुक्मिणी की सहायता करना ही चाहते हैं तो इसका एक पत्र द्वारकानाथ के पास शीघ्र-से-शीघ्र पहुँचा दीजिये। परन्तु यह विचार लीजिये कि महल और नगर के आस-पास सैनिक पहरा है। यदि पत्र ले जाते हुए पकड़ लिये गये तो शिशुपाल और रुक्म आपको मृत्यु से कम दण्ड न देंगे।

कुशल—राजभगिनि इसकी किंचित् भी चिन्ता न करिये। सत्य अपने भक्त की सहायता के लिए सदा उद्यत रहता है। इस पर भी यदि मैं पकड़ा गया और मुझे प्राणदण्ड मिला तो यह भी प्रसन्नता की बात होगी। मैं कुछ समय पश्चात

नष्ट होने वाले वृद्ध शरीर को सत्य की सेवा में अर्पण कर सकूगा ।

कुशल की दृढता देख कर रुक्मिणी के हृदय का आशा-अकुर लहलहा उठा । उसने कुशल को वह पत्र दिया जो रात के समय श्रीकृष्ण के नाम लिखा था । कुशल को पत्र देकर रुक्मिणी कहने लगी—वृद्ध पुरोहित आपका नाम ही कुशल है ! इसलिए आपको कुछ सिखाना अनावश्यक है । आप सब बातो से परिचित ही है । मुझे जो कुछ कहना था वह मै पत्र मे लिख चुकी हूँ । आप से केवल यह और कहती हूँ कि समय देखकर यह पत्र देना और कहना कि विवाह-दिन के पश्चात् मुझे जीवित न पा सकेंगे । इसलिए विवाह के दिन तक मेरी खबर ले ही ले । यह अन्तिम अवधि है । मै आशा की डोरी के सहारे ही जीवित हूँ । आशा टूटते ही मेरे प्राण-पखेरू भी उड जायेंगे ।

भुआ ने भी श्रीकृष्ण से कहने के लिए कुशल से कुछ समाचार कहे । रुक्मिणी और भुआ के कहे हुए समाचार सुन कर और पत्र लेकर कुशल राजमहल से अपने घर आया और वहाँ से द्वारका के लिए चल पडा ।

कुन्डिनपुर के चारो ओर सशस्त्र सेना का प्रहरा लगा हुआ था । नगर से बाहर जाना या बाहर से नगर मे आना असम्भव-सा हो रहा था । सैनिको के उस घेरे मे से वृद्ध ब्राह्मण का निकल जाना बहुत कठिन कार्य था, परन्तु कुशल ने उस कठिन कार्य को भी सरल कर दिखाया । वह न मालूम

किस तरह सैनिकों के पहरे में से बाहर निकल गया। सैनिकों में से किसी को भी कुशल के निकलने का पता न लगा। इतिहास में भी ऐसे कई उदाहरण पाये जाते हैं। गुजरात का बादशाह सेना द्वारा चित्तौड का किला घेरे पड़ा था। कोई व्यक्ति न तो किले मे जा ही सकता था, न किले के बाहर ही आ सकता था। चित्तौड़ की रानी किले की रक्षा कर रही थी, परन्तु कब तक! अपनी असमर्थता अनुभव करके रानी ने मुगल बादशाह हुमायू के पास राखी भेजकर सहायता मांगनी चाही, परन्तु गुजराती सेना के पहरे में किसी का राखी लेकर निकल जाना बहुत कठिन था! फिर भी राखी लेकर एक राजपूत उस घेरे में से निकल गया और हुमायू के पास राखी पहुँचा ही दी। राखी पाकर हुमायूं भी रानी की सहायता को आया और उसने गुजरात के बादशाह को मार भगाया। नागौर के लिए भी एक इतिहास-प्रसिद्ध घटना ऐसी ही है। गुजरात के बादशाह गयासुद्दीन ने नागौर को घेर रखा था। नागौर के राजा दिलीपसिंह की लड़की पन्ना ने रुद्रसिंह नाम के एक वीर राजपूत के पास राखी भेजकर उसकी सहायता मंगवानी चाही थी। उस समय भी किसी का घेरे में से निकल जाना कठिन था, लेकिन एक राजपूत राखी लेकर निकल ही गया। इतिहास की इन घटनाओं के सिवा कृष्ण-जन्म की घटना तो ससार-प्रसिद्ध ही है। कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार मे डाल रखा था और ऊपर से कड़ा पहरा लगा रखा था। वसुदेव के लिए कृष्ण

को गोकुल लेकर जाने का कोई मार्ग न था, फिर भी वसुदेव कृष्ण को लेकर निकल ही गये। कुशल के लिए भी यही बात हुई। वह भी उस सैनिक घेरे मे से द्वारका जाने के लिए सकुशल निकल गया।

१ : नीति-प्रयोग

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च,
हिंसा दयालुरपिचार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुर रत्न धनागमा च,
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।।

अर्थात्—राजाओ की नीति, वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। वह कही सत्यवादिनी, कही कटु-भाषिणी, कही प्रियभाषिणी, कही हिंसा कराने वाली, कही दया-लुता दिखाने वाली, कही लोभी, कही उदार, कही अपव्यय करने वाली और कही धन संचय करने वाली बन जाती है।

राजाओं की कोई एक नीति नही होती। वे जहाँ जिस नीति से कार्य चलता देखते हैं, वहाँ उसी नीति से काम लेने लगते हैं। फिर चाहे वह नीति धर्म और न्याय के अनुकूल हो या प्रतिकूल, इसकी उन्हे चिन्ता नही होती, उन्हे तो कार्य साधने की चिन्ता रहती है। वे कही साम-नीति से काम लेते हैं। दूसरे को अपने समान बना कर या मान देकर कार्य साधने हैं। कही दाननीति का उपयोग करते हैं। खूब उदारतापूर्वक द्रव्य आदि देकर काम बनाते हैं। कही दण्डनीति चलाते है। मारपीट कर अपना मतलब निकालते

हैं और कहीं भेदनीति को आगे रखते है। फूट डालकर एक को बडा, दूसरे को छोटा बता कर सिद्ध करते है। इसी प्रकार के छल-कपट का नाम ही राजनीति है। इसे जानने वाले ही राजनीति-कुशल माने जाते हैं।

शिशुपाल भी राजा था। वह भी नीति और उसका प्रयोग जानता था। रुक्मिणी को अपने अनुकूल करने के लिए भी उसने नीति का ही प्रयोग करना उचित समझा, लेकिन शुद्ध सत्य के सन्मुख कपट भरी नीति कदापि सफल नही होती।

कुन्डिनपुर नगर को सेना से घेरने के पश्चात् शिशुपाल ने विचार किया कि यद्यपि मेरा मित्र रुक्म अपनी बात पूरी करेगा और रुक्मिणी के न मानने पर वह बलपूर्वक रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह देगा। परन्तु दण्डनीति का प्रयोग करने से पूर्व साम, दाम और भेद नीति का प्रयोग करना अच्छा है। दण्डनीति अन्तिम नीति है। इससे पूर्व की नीति से यदि कार्य हो जाये तो सर्व श्रेष्ठ है। इसलिए मुझे रुक्मिणी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पहले साम, दाम और भेद नीति से ही काम लेना चाहिए। इस प्रकार विचार कर शिशुपाल ने अपने साथ की दूती-दासियो को बुला कर उनसे कहा कि क्या तुम लोग रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह करने के लिए राजी नही कर सकती ?

दूतिया—महाराज, हम क्या नही कर सकती! ऐसा कौन-सा कार्य है जो हम से न हो सके! हम दिन को रात बता देने और रात को दिन बता देने की शक्ति रखती है। रुक्मिणी

तो चीज ही क्या है, हम इन्द्राणी को भी उसके निश्चय से हिला सकती हैं। रुक्मिणी वेचारी तो लड़की है, उसे वश में करना कौन-सी वात है। आपने अब तक हमे आज्ञा ही नही दी, नही तो कभी से रुक्मिणी स्वय आकर आपके पावों गिरी होती।

शिशुपाल—हाँ, तुम ऐमी ही हो। मुझे विश्वास है कि तुम रुक्मिणी को मेरे साथ विवाह करना स्वीकार करा दोगी। अच्छा तो, तुम्हें इस कार्य के लिए जो कुछ चाहिए, सो ले लो और कार्य में लग जाओ।

दूतिया—रुक्मिणी के यहाँ विना कोई विशेष कारण वताये जाना ठीक नही है और वह कारण भी ऐसा होना चाहिए कि जो हमारे कार्य में सहायक हो। आप सुन्दर तथा वहुमूल्य वस्त्राभूषण और शृङ्गार-सामग्री मँगवा दीजिए, हम रुक्मिणी को शृङ्गार कराने के वहाने रुक्मिणी के यहाँ जायेंगी। वे वस्त्राभूषण रुक्मिणी को आपकी ओर आकर्षित करने मे सहायक भी होंगे। आगे जो कुछ करना होगा, वह तो हम करेंगी ही।

दूतियों की युक्ति शिशुपाल को पसन्द आई। उसने दूतियो की इच्छानुसार स्त्रियो के योग्य अनेक वहुमूल्य वस्त्राभूषण और शृङ्गार-समाग्री मँगवा दी। दूतिया उन वस्त्रालंकारो को वड़े-वड़े स्वर्ण-थालो मे सजा कर रथ में बैठ वड़े ठाटवाट से रुक्मिणी के यहाँ चली। जो कोई पूछता था कि ये कहाँ जाती हैं तो उनके सारथी आदि कह देते थे कि राजकुमारी को शृङ्गार कराने जा रही है।

संसार में ऐसे वहुत कम मनुष्य निकलेगे जो प्रलोभन

मे पड़ कर अपने ध्येय से विचलित न होते हों। ध्येय से विचलित होने वालों मे अधिक सख्या प्रलोभन मे पड कर पतित होने वालो की ही मिलेगी । हॉ, यह अन्तर चाहे मिले कि किसी ने किस प्रलोभन से ध्येय को ठुकराया और किसी ने किस प्रलोभन से । कोई धन के प्रलोभन में पड़ा होगा, कोई सुख के प्रलोभन मे, कोई स्त्री, खान-पान आदि के प्रलोभन में पड़ कर । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी सयम (अपने ध्येय) को भुला देते है । बड़े-बड़े न्यायनिपुण राजा भी प्रलोभन मे फँस कर अन्याय करने लगते है और प्रलोभन में पड़ जाने पर पतिव्रता स्त्रियाँ भी पतिव्रत धर्म का तिरस्कार कर देती हैं ।

जिन प्रलोभनों मे पड कर स्त्रियाँ अपना ध्येय भुलाती उनमे आभूषणादि शृङ्गार-सामग्री, पुरुष द्वारा सम्मान-प्राप्ति और पुरुष पर आधिपत्य प्रमुख हैं। अपने ध्येय को ठुकराने वाली स्त्रियो मे से अधिकाश इन्ही प्रलोभनो मे पड़ कर अपना ध्येय भूलती हैं और अपने ध्येय को ठुकराती है। जिनमे दृढता का अभाव है, धैर्य की कमी है, वे स्त्रियाँ इस प्रकार के प्रलोभनो के सम्मुख अपने ध्येय पर स्थिर नही रह सकती। वे उन प्रलोभनो के सन्मुख नतमस्तक हो जाती हे । शिशुपाल की दूतिया इस बात को अनुभव-पूर्वक जानती हैं, इसलिए वे रुक्मिणी को भी इसी अस्त्र से वश करने की इच्छा रखती है और वे ऐसी ही सामग्री जुटा कर जाती है ।

दूतिया राजमहल को आई। वे रथ से उतर कर और आभूषणादि के थाल हाथो मे लेकर रुक्मिणी की माता

के पास गई। उन्होने रुक्मिणी की माता से कहा कि हम चन्देरीराज की ओर से राजकुमारी को शृङ्गार कराने के लिए आई हैं, अत. हमे शृङ्गार कराने की स्वीकृति दीजिए। रानी ने दूतियो का सत्कार करके उन्हे स्वीकृति दे दी। दूतिया प्रसन्न होती हुई रुक्मिणी के पास आई। उन्होने वडी ही नम्रता-पूर्वक रुक्मिणी का अभिवादन किया और रुक्मिणी के सामने वस्त्राभूषणादि की प्रदर्शिनी-सी लगाकर बैठ गई। रुक्मिणी को इनके आने का अभिप्राय मालूम हो चुका था, इसलिए उसने न तो इनकी ही ओर देखा और न इनके लाये हुए वस्त्राभूपणादि के थालो की ओर ही। रुक्मिणी के इस व्यवहार से दूतियो को कुछ निराशा तो हुई, परन्तु उन्होने निराशा को दबा कर प्रयत्नशील रहना ही उचित समझा। वे रुक्मिणी के आसपास बैठ गई और कहने लगी कि हमारे वडे भाग्य, जो हमें आपकी सेवा प्राप्त हुई।

दूसरी—हमने आपकी जैसी प्रशसा सुनी थी, आप तो उससे वहुत ही वढकर हैं। आप ऐसी रूपवती हमारे देखने मे तो नही आई।

तीसरी—जोडा भी अच्छा मिला है। ससार मे ऐसा जोड़ा वड़ी मुश्किल से मिला करता है।

चौथी रुक्मकुमार हैं भी बुद्धिमान। वे अपनी प्यारी वहिन के लिए वेजोड़ पति कैसे ढूढ़ सकते थे।

पाचवी—राजकुमारी के रूप की अभी क्या प्रशसा करती हो, जरा शृंगार करा कर आपका रूप देखो।

छठी—हाँ ठीक कहा। राजकुमारी, हमारे महाराज ने हमे यह शृंगार-सामग्री लेकर आपको शृङ्गार कराने के लिए भेजा है। आप शृङ्गार कराने की आज्ञा दीजिए।

दूतियों की बाते रुक्मिणी चुपचाप सुन रही थी और विचार रही थी कि मेरी स्त्री-बहिनों मे कैसी-कैसी निर्लज्जा है कि जो अपनी एक बहन को शृङ्गार-सामग्री का प्रलोभन देकर पथ-भ्रष्ट करना चाहती है। इस प्रकार का कार्य करने वाली नीच स्त्रियाँ बार-बार धिक्कारने योग्य हैं।

रुक्मिणी ने दूतियो की बात का कोई उत्तर न दिया। वह उसी प्रकार गम्भीर बनी बैठी रही। रुक्मिणी से कोई उत्तर न पाकर एक दूती रुक्मिणी से कहने लगी—राजकुमारी आपने हमारी प्रार्थना का कोई उत्तर भी नही दिया। तनिक आप इस शृगार-सामग्री की ओर दृष्टिपात तो करिये। यदि आपकी दृष्टि से इसमे कुछ कमी हो तो हम उसकी पूर्ति को तत्पर हैं।

रुक्मिणी ने इस बात का भी कोई उत्तर न दिया। तब दूसरी दूती पहली दूती की ओर देखती हुई कहने लगी—शृङ्गार-सामग्री में तो कोई कमी नही दिखती। ऐसे-ऐसे बहु-मूल्य और सुन्दर वस्त्राभूषण किसी दूसरे को तो देखने के लिये भी नही मिल सकते।

रुक्मिणी को फिर भी चुपचाप देखकर तीसरी दूती अपनी साथिनियो से कहने लगी—बहिन तुम भोली स्त्रियों की तरह बाते कर रही हो। क्या राजकुमारी इन वस्त्राभूषणो

के प्रलोभन में पड कर अपने अधिकार की बात भूल सकती है। आखिर तो राज-कन्या है, बुद्धिमती हैं, कोई हम तुम थोड़े ही हैं जो वस्त्राभूषण के लिए अधिकार का बलिदान कर दे! राजकुमारी विचारती है कि मैं ऐसी सुन्दरी और बुद्धिमती हूँ, फिर भी दूसरी पत्नी होने के कारण पटरानी पद से वचित रहूँगी। यह विचार कर ही आप चुप हैं।

चौथी—यह कौनसी बात है! इसके लिए तो महाराज और रुक्मकुमार मे पहले ही बातचीत हो गई है। महाराज ने रुक्मकुमार से प्रतिज्ञा की है कि मै आपकी बहिन को ही पटरानी बनाऊँगा और उन्ही का पुत्र राज्य का अधिकारी होगा। यदि राजकुमारी चाहती हो तो हम महाराज से ऐसा प्रतिज्ञापत्र लिखवाकर ला सकती है। राजकुमारी क्या आप यही चाहती है?

यह बातचीत सुन कर रुक्मिणी विचारती है कि इनका महाराज बड़ा मूर्ख है, जो मुझे देखे बिना, मेरी बुद्धि जाने बिना मुझे पटरानी बनाने की प्रतिज्ञा कर चुका है। धिक्कार है ऐसे पुरुष को! जो मोहवश न्याय-अन्याय का भी विचार नही करता और मेरे लिए अपनी पत्नी के अधिकारों की हत्या करने को तैयार है। इस प्रकार के विचार से रुक्मिणी के हृदय मे शिशुपाल के प्रति घृणा हो रही थी।

दूतियो को रुक्मिणी से जब इस बात का भी उत्तर न मिला, तब पाचवी दूती चौथी से कहने लगी—सखी, जिस स्त्री के अधीन उसका पति होता है, उसके सामने तुच्छ अधि-

कार की क्या गणना है। पटरानी-पद मिल गया, तब भी पति-प्रेम से वञ्चित रहने पर वह पटरानी-पद और दुःखरूप हो जाता है। महाराज इन्हे पटरानी तो बना दे परन्तु इनके आज्ञावर्ती न रहें तो वह पटरानी-पद भी किस काम का ! सुख तो पति अधीन रहे तभी है और तभी पटरानी-पद एवं वस्त्राभूषण आदि भी सुखदायी होते हैं।

छठी—हमारे महाराज ऐसे नही हैं जो इस प्रकार धोखा दे। वे सदैव राजकुमारी के आज्ञावर्ती रहेंगे, आपकी सम्मति की कदापि अवहेलना न करेंगे। यदि राजकुमारी को केवल यह ही विचार हो तो हमारे महाराज इस बात की लिखित और शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा कर सकते है। बोलो राज-कुमारी आप महाराज के कथन पर ही विश्वास कर लेंगी या उनसे लिखित प्रतिज्ञापत्र लेगी ? कुछ बोलिए तो !

रुक्मिणी के हृदय में दूतियों की बातो से शिशुपाल के प्रति अधिकाधिक घृणा होती जा रही थी ! छठी दूती की बात सुन कर रुक्मिणी विचारने लगी कि क्या वह कोई पुरुष है जो स्त्री का दासत्व स्वीकार करने के लिए तैयार है। पारस्परिक सहयोग तो दाम्पत्यसुख का कारण ही है परन्तु जो बिलकुल दास बनने को तैयार है वह पति कैसे हो सकता है।

रुक्मिणी ने दूतियो से कहा कि मुझे तुम लोगों की बाते अच्छी नही लगती। तुम अपनी बातचीत बन्द करो और यह पाप-सामग्री की प्रदर्शिनी उठा कर यहाँ से चली जाओ तथा अपने महाराज से कह दो कि रुक्मिणी तुम्हें नही

चाहती इसलिए यदि तुम वीरता का दावा रखते हो, यदि तुम में पुरुषत्व है, यदि तुम क्षत्रियोचित न्याय समझते हो तो रुक्मिणी को पाने की आशा छोडकर घर लौट जाओ। मै वस्त्राभूपण, पटरानी-पद या तुम्हारे महाराज के आज्ञावर्ती रहने के प्रलोभन मे नही पड सकती। मैं टूटे फटे और पुराने वस्त्र पहन कर अपनी लज्जा बचाऊँगी परन्तु उन वस्त्राभूपणो की ओर देखूगी भी नही, जिनमें पाप-भावना भरी हुई है। मै पति की दासी बनकर जीवन बिताना चाहती हूँ, पटरानी बनने या पति को अपना सेवक बनाने की भावना मुझमे किंचित् भी नही है। यह इच्छा तो किन्ही नीच स्त्रियो मे ही हो सकती है और नीच स्त्रियाँ ही किसी प्रलोभन मे पड कर अपना धर्म खो सकती हैं। मुझसे तुम इस बात की आशा छोड़ दो और अपने महाराज से भी कह दो कि वे घर को लौट जाये ! ऐसा करने पर उनकी बड़ाई होगी, उन्हे यश प्राप्त होगा और सज्जन लोग उनकी प्रशसा करेगे। मैं श्रीकृष्ण को अपना पति मान चुकी हूँ, इस कारण तुम्हारे महाराज के लिए पर-स्त्री हूँ। पराई स्त्री को अपनी स्त्री बनाने का प्रयत्न करना नीच पुरुषों का काम है। इस नीच मनोवृत्ति को त्यागने मे ही तुम्हारे महाराज की शोभा है।

दूती—वाह राजकुमारी, वाह ! पहले तो आप बोली ही नही और बोली तो यह बोली। हमारे महाराज आपके यहाँ बिना बुलाये नही आये है किन्तु यहाँ से टीका गया था तब आये हैं। वे पृथ्वी पर साक्षात् इन्द्र के समान हे। ऐसो

कौन अभागिनी स्त्री होगी जो उनकी पत्नी बनने का सौभाग्य ठुकरावे ! आप कुछ विचार कर तो बोली होती ।

रुक्मिणी—इन्द्र ऐसे के लिए तो इन्द्रानी ऐसी की ही आवश्यकता है, इसलिए अपने महाराज से कहो कि वे किसी इन्द्रानी ऐसी को ढूँढे । मुझे ऐसा सौभाग्य नही चाहिये ।

दूती—राजकुमारी जब टीका चढा है और बारात सजकर आई है, तब विवाह तो अवश्य ही होगा ! यदि आप सरलता और प्रसन्नता से न मानेगी तो किसी दूसरे उपाय से मनाया जायेगा परन्तु विवाह अवश्य होगा । महाराज ने तो हमे यह विचार कर आपको शृङ्गार कराने के लिये भेजा कि यदि आप सीधी तरह मान जाये तो बलप्रयोग न करना पडे । सीधी तरह मान जाने मे आपकी भी प्रतिष्ठा है ।

रुक्मिणी—बस अधिक कुछ मत कहो, यहाँ से चली जाओ । यदि तुम सीधी तरह न जाओगी तो तुम्हे बलात् निकलवा दूगी ।

दूतियां रुक्मिणी को कुछ भय दिखाती हुई कहने लगी कि यदि आपको हमारे महाराज के साथ विवाह नही करना था तो यह बात अपने भाई से कहती जिससे वह टीका भेज कर बारात तो न बुलवाते ! उनसे तो कुछ कहा नही और हम पर क्रोध जताती हो ! क्या हमारा कोई स्वामी ही नहीं है, जो आप हमारा तिरस्कार करती है !

रुक्मिणी ने समझ लिया कि ये दूतिया यहाँ से सीधी तरह न जायेंगी । ये तो प्रपच करने के उद्देश्य से ही आई

है । उसने अपनी दासियों को आज्ञा दी कि दूतियो को यहाँ से निकाल दो, इनकी यह सामग्री उठाकर फेक दो और इनका थोड़ा ऐसा सत्कार भी कर दो कि जिससे भविष्य मे इन्हे किसी स्त्री को ठगने का दु.साहस न हो । रुक्मिणी की आज्ञा पाते ही रुक्मिणी की दासियों ने दूतियो को पीट कर वाहर निकाल दिया और उनके लाये हुए वस्त्राभूपणादि को थालो सहित उठा कर फेक दिया । दूतिया रोती-चिल्लाती वस्त्राभूषणों को एकत्रित कर अपना-सा मुँह लिये चली आई । उन्हे यह भय हो रहा था कि हमने शिशुपाल के सामने अपनी प्रशंसा की थी, परन्तु अव मार खाकर भी हम उन्हे अपना मुँह कैसे दिखायेगी ! अन्त मे त्रियाचरित्र का अवलम्बन लेकर वे रोती हुई शिशुपाल के सामने आई । शिशुपाल उत्सुकता-पूर्वक दूतियों की प्रतीक्षा कर रहा था ! दूतियों के कथन पर से उसे रुक्मिणी की प्राप्ति की वहुत कुछ आशा हो गई थी, परन्तु सहसा रुदन करती हुई दासियो को सामने देखकर उसकी तात्कालिक आशा मिट गई । उसने आश्चर्य-पूर्वक दूतियों से पूछा कि तुम तो रुक्मिणी को समझाने गई थी, फिर इस प्रकार रोती हुई कैसे आई ? दूतियों ने शिशुपाल के सामने रुक्मिणी की अत्युक्तिपूर्ण शिकायत की । रुक्मिणी द्वारा अपना और अपनी दासियो का इस प्रकार अपमान हुआ सुनकर शिशुपाल को वहुत ही क्रोध हुआ । वह कहने लगा—एक लड़की का इतना दु.साहस ? मै अभी उसे पकड मगाता हूँ और उसकी वुद्धि ठिकाने लाये देता हूँ ! मेरे

योद्धाओ ! जाओ, रुक्मिणी का महल घेर लो और उसे पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करो ।

शिशुपाल की आज्ञा से उसके योद्धा तैयार हुए । इतने ही मे वहाँ रुक्म आ गया । उस समय शिशुपाल क्रोध मे वडवड़ा ही रहा था । रुक्म ने उससे पूछा कि क्या बात है ? आप क्रुद्ध क्यों हैं ?

शिशुपाल—ये दासिया आपकी बहिन को शृङ्गार कराने गई थी, परन्तु आपकी वहिन ने इनके साथ बड़ा ही दुर्व्यवहार किया, इन्हे पिटवा दिया, शृङ्गार-सामग्री नष्ट-भ्रष्ट करवा डाली और मेरे लिये भी वहुत अपमान भरी वातें कही । इसलिये मैंने मेरे योद्धाओं को आज्ञा दी है कि आपकी वहिन को पकड़ लाये ।

रुक्म—जरा ठहरिये, जल्दी मत करिये । रुक्मिणी को पकड लाना कोई सरल वात नही है । ऐसा करने के लिए उद्यत होने का अर्थ मुझ मे और आप मे युद्ध छेडना है । मैं इस प्रकार का अपमान कदापि सहन नहीं कर सकता । आपकी इन दासियो ने कोई अनुचित वात कही होगी, तभी इनके साथ ऐसा व्यवहार हुआ होगा । अन्यथा रुक्मिणी तो क्या, कोई वुद्धिहीन मनुष्य भी ऐसा नही कर सकता । आप अपने योद्धाओ को रोकिये । इन दासियो की बातों में पड़कर आपस में युद्ध ठानने से उपहास होगा और कोई परिणाम भी न निकलेगा । मैं आपसे जव प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि रुक्मिणी को आपके साथ अवश्य विवाह दूगा तब आपको किसी प्रकार

की चिन्ता या दूसरी कार्यवाही करने की क्या आवश्यकता है !

रुक्म की बातो से शिशुपाल का क्रोध शान्त हुआ। उसने अपने योद्धाओं को रोक लिया और रुक्म से मित्रता की बाते करने लगा।

शिशुपाल के पास से उठ कर रुक्म अपने घर आया। उसे रुक्मिणी पर बहुत क्रोध हो रहा था। वह विचारता था कि आज रुक्मिणी के कारण मित्र भी शत्रु बन जाता और मै जिससे सम्बन्ध जोडना चाहता हूँ उसी से युद्ध हो जाता। अच्छा हुआ जो मै समय पर पहुँच गया, नही तो शिशुपाल के योद्धा जब महल मे घुसने लगते तब युद्ध अवश्यभावी था। रुक्मिणी को इतना समझाया, बुझाया परन्तु वह अपनी हठ नही छोडती है। यह नही जानती कि भाई शिशुपाल से प्रतिज्ञाबद्ध है। उसे अपनी हठ के आगे मेरी बात का विचार ही नही है। उसकी हठ मानकर शिशुपाल के साथ उसका विवाह न करने का अर्थ मुझे अपनी बात खोना और शिशुपाल को अपना शत्रु बनाना है। मैं एक बेसमझ लड़की के कारण ऐसा अनर्थ कदापि नही होने दे सकता। अब तक उसे समझाने मे मै तटस्थ रहा हूँ, पर अब मै स्वयं जाकर उसे समझाता हूँ। यदि वह मेरे समझाने पर भी न समझी तो कल विवाह के दिन उसको पकड कर शिशुपाल के साथ विवाह दूगा। वह कर ही क्या सकती है ! मै चाहता था कि किसी प्रकार वह प्रसन्न रहे परन्तु जब वह मानती ही नही है तब उसकी प्रसन्नता की अपेक्षा कैसे कर सकता हूँ !

इस प्रकार विचार कर रुक्म रुक्मिणी के महल में आया। वह रुक्मिणी को देखकर कहने लगा—बहन रुक्मिणी तुम अब तक ऐसी क्यो वैठी हो ! तुम्हारे शरीर पर न तो उवटन लगा है और न किसी प्रकार का शृङ्गार ही है ! सारे नगर मे उत्सव हो रहा है, वारात आई हुई पड़ी है, कल विवाह का दिन है, फिर भी तुम मलीन वेश धारण किये उदास वैठी हो ! रुक्मिणी से इस प्रकार कहकर रुक्म रुक्मिणी की सखियो से कहने लगा—तुम लोगों ने वहिन को अब तक शृंगार भी नही कराया ! तुम्हारा यह अपराध है तो अक्षम्य परन्तु रुक्मिणी के विवाहोपलक्ष्य मे मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। अब शीघ्र शृंगार-सामग्री लाकर मेरे सामने ही वहिन को शृङ्गार कराओ।

रुक्म समझता था कि मेरे इस कुटिलनीति पूर्ण कथन से रुक्मिणी पर मेरा प्रभाव पडेगा परन्तु रुक्म की वातो का रुक्मिणी पर किंचित् भी प्रभाव नही पड़ा। उसने रुक्म से कहा—भैया आप इन पर व्यर्थ ही रोष करते है ! इनका क्या अपराध है ! यदि कोई अपराध है तो मेरा है ! मैंने ही उबटन आदि शृंगार नही किया है, न करूगी ही।

रुक्म—रुक्मिणी तू वहुत भोली है। जान पड़ता है कि तुझे किसी ने बहका दिया है। आज तक तू कभी मेरे सामने भी नही वोली और आज तू मेरी वात के विरुद्ध ऐसा कह रही है ! वारात आई हुई पडी है, कल विवाह का दिन है और तू शृङ्गार ही नही सजेगी ! यह कैसे हो सकता

है। नगर में तो इतनी धूमधाम है और जिसका विवाह है वह तू ऐसी बातें कर रही है !

रुक्मिणी—बारात आई है तो आओ, और नगर में धूमधाम है तो होओ, मुझे इससे क्या !

रुक्म—तो क्या बारात लौट जायेगी ? और तू कुंवारी ही बैठी रहेगी ? तेरे वास्ते मैंने इतना परिश्रम उठाया, इतना व्यय किया, पिता का विरोध सहा और तू कुछ समझती ही नही है !

रुक्मिणी—आपने जो कुछ भी किया वह अपने स्वार्थ के लिए। स्वार्थ के वश होकर आप मेरे अधिकार लूटने को तैयार हुए है। आपने मुझ पर कोई उपकार नही किया है अपितु न मालूम कब की शत्रुता का बदला चुकाया है।

रुक्म—इसमें मेरा क्या स्वार्थ था ? शायद तू यह समझती होगी कि मेरे विवाह का कार्य भाई ने अपने हाथ मे लेकर पिता को इस विचार मे तटस्थ रखा है कि पिता रुक्मिणी को बहुत द्रव्य दे देंगे। यदि वास्तव में तेरे मन मे यही सन्देह हो तो तेरा यह सन्देह भ्रमपूर्ण है। मेरे तू एक ही बहिन है। मैं तेरे को प्राणो से भी अधिक प्रिय समझता हूँ। इसलिए मै तेरे को दहेज में इतना अधिक द्रव्य दूगा कि जितना आज तक किसी ने भी न दिया होगा। हाथी, घोडे, रथ, दास-दासी, वस्त्राभूषण आदि देने में तनिक भी अनुदारता न रखूगा। बल्कि अपना आधा राज्य भी तुझे दे दूगा। बोल अब तो मेरा कोई स्वार्थ नही है ?

रुक्मिणी—मुझे धन-सम्पत्ति या राज्य का किंचित् भी लोभ नही है, न जैसा आपने कहा वैसा मै समझती ही हूँ। यदि आप इसी स्वार्थ के वश होते तब तो कोई बात ही न थी परन्तु आपका यह स्वार्थ नही है किन्तु शिशुपाल की मित्रता को दृढ बना कर अपना राज्य सुरक्षित बनाने का स्वार्थ है। इसीलिए आपने मेरे कन्योचित अधिकारो की हत्या करने की ठानी है। अन्यथा आप ही बताइये कि मेरी इच्छा जाने बिना आपको पिता की सम्मति की अवहेलना करके शिशुपाल को बुलाने का क्या अधिकार था।

रुक्म—इसमे अधिकार की कौनसी बात है! कन्या को जहाँ और जिसके साथ दी जाये, उसे वहाँ और उसके साथ जाना ही चाहिए। इसमें कन्या की सम्मति जानने की क्या आवश्यकता है?

रुक्मिणी—यह न्याय तो आप ही के मुँह का है। आप जैसा चाहे वैसा न्याय दे सकते है। परन्तु नीति-शास्त्र और धर्मशास्त्र मे तो यह कहा है कि जिसे कन्या चाहे वही वर हो सकता है, जिसे कन्या नही चाहती, वर नही हो सकता।

रुक्म—तू हमे नीति-धर्म सिखाती है? क्या नीति-धर्म हम से बढ कर हैं?

रुक्मिणी—हाँ, यह कहिये कि यदि हम नीति-धर्म को देखने जायें तो कन्या के इस अधिकार को कैसे लूट सकते हैं! भैया आप मुझ पर यह अन्याय मत करिये। बहिन के इस अधिकार को मत लूटिये। आपको सबके साथ न्याय

करना चाहिये तो क्या आप बहिन के साथ भी न्याय न करेंगे। मैं शिशुपाल को नही चाहती । मेरी दृष्टि मे शिशुपाल नीच से भी अधिक नीच है । वह वीर नही है, कायर पुरुष है । उसने अपनी दासियो द्वारा मुझसे कहलवाया कि मैं तुम्हे पटरानी बनाऊंगा और तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक रहूँगा । उसने मुझे देखा तक न था, मेरी बुद्धि के विषय मे उसे कुछ अनुभव न था फिर भी जो अपनी पत्नी के अधिकार छीन कर मुझे देने को तैयार है, जो स्त्री का सेवक बन सकता है, उसे वीर मानने का कौन-सा कारण है ? मै ऐसे नीच शिशुपाल को अपना पति कदापि नही बना सकती ।

रुक्म—मेरी समझ से तो शिशुपाल की किसी भी बात में समानता करने वाला संसार मे कोई दूसरा है ही नही । कभी तुम्हारी बात ठीक भी हो, तब भी यह विचार करो कि मेरे बड़े भाई अपनी बुद्धि-अनुसार जो कुछ कर चुके हैं मैं उसकी अवहेलना कैसे करूँ ! पिता के समान माने जाने वाले बड़े भाई के कार्य का विरोध करना कैसे ठीक है ?

रुक्मिणी—वाह भाई, आप तो बडे ही न्यायशील हैं ! साक्षात् पिता की सम्मति और उनके कार्य की अवहेलना करके आप मुझसे यह आशा कैसे करते है ? आपने तो पिता की भी बात नही मानी और मुझसे पिता के समान बनकर अपनी बात मनवाना चाहते है ! मै आपके कहने में लगकर या आपकी बात रखने के लिए अपने प्राण तो त्याग सकती हूँ परन्तु शिशुपाल की पत्नी बनकर अपने तथा माता-पिता

और जाति, कुल के मस्तक पर कलक का टीका नही लग-वाना चाहती । मै स्वय को एक पुरुष के समर्पण कर चुकी हूँ—मैने एक पुरुष को अपना पति बना लिया है । अब धर्म को ठुकरा कर मै दूसरे पुरुष को अपना पति कदापि नही बना सकती । चाहे ससार की समस्त आपत्तियाँ मुझ पर बरसने लगे, चाहे ससार के सब लोग मेरी निन्दा करे, चाहे देवगण मुझ पर कुपित हो जाये और चाहे संसार से मेरा अस्तित्व उठ जाये परन्तु आपकी इच्छा पूरी करने के लिए मै धर्म का अपमान कदापि न करूगी । मेरे पति श्रीकृष्ण हैं । मै उनको अपने हृदय-मन्दिर मे बैठा चुकी हूँ । स्वय को उनके समर्पण कर चुकी हूँ । अब शिशुपाल तो क्या, साक्षात् इन्द्र भी मेरे सामने आयें और मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहे तो मै उन्हें काग और श्वान के समान समझ कर उनका भी तिरस्कार ही करूँगी ।

रुक्म—रुक्मिणी जरा विचार कर । वश को कलकित मत कर । कृष्ण किसी भी दृष्टि से तेरे योग्य नही है । न तो उसके जाति कुल का ही पता है, न यह क्षत्रिय-समाज मे प्रतिष्ठित ही माना जाता है और न उसका रग रूप ही तेरे योग्य है । इन्ही कारणो से मैने पिता द्वारा किये गये कृष्ण के साथ तेरे विवाह करने के प्रस्ताव का विरोध किया था । शायद तू पिता के कहने मे लग रही है या नारद तुझे भ्रम मे डाल गया है परन्तु तू मेरे पर विश्वास रख । मै कदापि तेरा अहित न करूँगा और इसके लिए अपने जीवित

रहते तो कृष्ण के साथ तेरा विवाह न होने दूगा ।

रुक्मिणी—आप मेरा विवाह श्रीकृष्ण के साथ नही होने देना चाहते और मै शिशुपाल के साथ विवाह करना नही चाहती । वस समाप्त हुई वात । न आपकी इच्छा-नुसार कार्य हो, न मेरी इच्छानुसार कार्य हो । आप जिसे मेरा अहित समझते है उसे ही मै अपना हित समझ रही हूँ । अव वास्तविकता का निर्णय कौन करे ? इसलिए जव तक वास्तविकता का निर्णय न हो जाये तव तक आप भी चुप रहिये, मै भी चुप रहती हूँ और शिशुपाल से कह दीजिये कि वह भी अपने घर जाकर चुप वैठे ।

रुक्म—और अव तक जो कुछ हुआ है वह सव व्यर्थ जाये, शिशुपाल खाली लौट जाये तथा मेरी सव वात वच्चो की-सी वात हो जाये ! क्यो ?

रुक्मिणी—इसका मैं क्या करूँ ? इस वात का विचार तो पहले ही कर लेना चाहिये था कि मैं पिता की वात का विरोध करके वहिन का विवाह शिशुपाल के साथ करना तो चाहता हूँ परन्तु वहिन की इच्छा भी तो जान लू ! आपको अपनी इच्छा से मेरा जीवनसाथी चुनने का क्या अधिकार था ? क्या मुझे अपने जीवन के सुख-दुःख के विषय में भी विचार करने का अधिकार नही है ? क्या मै पशुओ से भी गई वीती हूँ ! पशु की भी इच्छा देखी जाती है और यदि वह किसी के साथ नही जाना चाहता तो उसे भी जवरदस्ती नही भेजा जाता है। लेकिन आपने मेरे लिए यह भी नही

किया ! क्या कन्या का जीवन इतना निकृष्ट है ? क्या कन्याएं मनुष्य नही है ? शिशुपाल भी मनुष्य है और मै भी मनुष्य हूँ । वह अपनी इच्छा पूरी करने के लिए मुझ पर जबरदस्ती करे और मेरी इच्छा की हत्या करे, इसका क्या कारण ? क्या पुरुष मे ही इच्छा होती है, हम मे इच्छा नही होती ? पुरुष तो अपनी अनुचित इच्छा पूरी कर सकता है और हम अपनी उचित इच्छा भी पूरी नही कर सकती ? बल्कि हमारी माता और भाई ही उस दूसरे पुरुष की इच्छा पूरी करने के लिए अपनी बहिन या पुत्री की इच्छा की घात करने को तैयार होते है । हमारा जीवन एक ऐसे व्यक्ति के अधीन करने को तैयार होते है जिसके अधीन होने को हम बिल्कुल ही इच्छा नही रखती । हम कन्याओं पर होने वाला यह अन्याय सर्वथा असह्य है। मै इस अन्याय का लक्ष्य न बनूगी, किन्तु अपनी शक्ति भर, यहाँ तक कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगी और कन्याओं के इस अधिकार को सुरक्षित रखूगी । मै आपसे भी प्रार्थना करती हूँ कि आप यह अन्याय मत करिये, किन्तु इस अन्याय को रोकने मे मेरे सहायक बनिये ।

रुक्म—मै सोचता था कि यह विवाह कार्य सानन्द समाप्त हो, इसमे किसी प्रकार का विघ्न न हो और बहिन को भी प्रसन्न रखा जाये परन्तु तेरा दु.साहस तो बहुत बढा हुआ है । तू समझाने से नही मानती लेकिन इस प्रकार की हठ का परिणाम अच्छा नही होता । मैंने शिशुपाल को बुलाया

है और उसे वचन दिया है तो उसके साथ तेरा विवाह तो करूँगा ही, फिर चाहे तू प्रसन्नता से विवाह करना स्वीकार कर या विवश होकर । हम वीर है, क्षत्रिय है, बड़े-बड़े वीरों को भी हमारे सामने अपनी बात छोड़नी पड़ती है तो तू तो चीज ही क्या है ! कल मै तेरे को पकड़ कर तेरा विवाह शिशुपाल के साथ कर ही दूगा !

रुक्मिणी—दुराग्रही को अपना दुराग्रह दिखाई नही देता, वह तो सत्याग्रही को दुराग्रही ही कहता है । इसके अनुसार आप अपनी अन्याय-पूर्ण हठ नही देखते और मेरी सच्ची बात को भी हठ बता रहे हैं । आप वीर है तो क्या एक कन्या का अधिकार लूटने के लिए ? अन्याय करने के लिए ? आपके सामने उन लोगों ने अपनी बात छोड़ दी होगी जिन्हे प्राणों का ममत्व रहा होगा । मैं तो पहले ही प्राणो का ममत्व छोड़ चुकी हूँ और प्राणों का ममत्व छोड़कर ही मैने अन्याय का विरोध करने का साहस किया है । आप इस शरीर पर अपना आधिपत्य जमा सकते हैं, इस शरीर को अपने अन्याय, अपनी वीरता और अपने क्षात्रत्व का लक्ष्य बना सकते हैं परन्तु आत्मा शरीर से भिन्न है, 'मै' आत्मा हूँ, शरीर नही हूँ । इसलिए मुझे आपसे, आपकी सेना से या आपके मित्र शिशुपाल से तनिक भी भय नही है ।

रुक्म की सारी नीति असफल हुई । वह रुक्मिणी पर क्रोध करता हुआ वहाँ से चला गया । रुक्म के चले जाने पर रुक्मिणी की माता, भौजाई और राजपरिवार की अन्य

स्त्रियाँ रुक्मिणी को समझाने तथा कहने लगी कि अपने बड़े भाई की आज्ञा न मानना अपराध है, पाप है। रुक्म को रुष्ट करना ठीक नही है। वह बड़ा ही क्रोधी है। कल वह अवश्य ही तुम्हारा विवाह शिशुपाल के साथ कर देगा। फिर तुम प्रसन्नता से विवाह करना स्वीकार न करके अपने को विपत्ति मे क्यों डाल रही हो! गृह में क्लेश क्यों फैला रही हो और अपना अपमान क्यों करा रही हो! अभी भी समय नही गया है। तुम यदि स्वीकृति दो तो हम रुक्म को शान्त कर देगी।

इस प्रकार सब स्त्रियो ने रुक्मिणी से शिशुपाल के साथ विवाह करना स्वीकार कराने की बहुत चेष्टा की परन्तु उन्हे सफलता न मिली। अन्त मे निराश होकर वे सब भी अपने-अपने स्थान को चली गई।

१० : कृष्णागमन

वीर पुरुष सहायता मांगनेवाले की सहायता करते ही हैं। वे शरणागत को कभी निराश नही करते। शरणागत की रक्षा करना वे अपना धर्म मानते हैं और इस धर्म का पालन करने से कदापि पीछे नही हटते। ऐसा करने मे उन्हें धन-जन की हानि ही क्यों न उठानी पडे, उन्हें अपना अस्तित्व ही क्यों न खो देना पड़े और अपना सर्वस्व ही नष्ट क्यो न कर देना पडे, वे शरणागत की रक्षा और सहायता मांगनेवाले की सहायता अवश्य ही करेंगे। चाहे उनका शत्रु ही शरण आया हो या शत्रु ही सहायता मागता हो, ऐसे समय मे वीर लोग शत्रुता भूलकर मित्रता का ही परिचय देंगे। मुगल बादशाह बाबर और चित्तौड के राणा सांगा मे भयकर लडाई हुई थी, परन्तु सांगा के पश्चात् चित्तौड़ की रानी ने जब बाबर के लड़के हुमायूं के पास राखी भेजकर गुजरात के बादशाह को परास्त करने की सहायता मागी थी, हुमायूं बंगाल से दौडा हुआ आया था और उसने अपने स्वधर्मी गुजरात के बादशाह से युद्ध करके उसे परास्त किया था। रूपनगर की राजकुमारी ने औरगजेब से बचाने के लिए उदयपुर से राणा राजसिह से प्रार्थना की थी तब राणा राजसिह ने धन-जन की अत्यधिक हानि उठाकर भी

राजकुमारी की रक्षा की थी। औरंगजेब के लड़के अकबर ने दुर्गादास राठौड की शरण ली थी, तब दुर्गादास ने अनेक कष्ट सहकर भी उसकी सहायता की थी, नागौर के राजा दिलीपसिह और रुद्रसिह मे घोर शत्रुता थी परन्तु जब दिलीपसिह की लडकी ने राखी भेजकर रुद्रसिह से अपने पिता की सहायता चाही थी, तव रुद्रसिह पूर्व-शत्रुता को भूल सहायता के लिए आया था और गुजरात के बादशाह को भगा कर नागौर की रक्षा की थी। इतिहास में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण है। शास्त्रानुसार भी राजा श्रेणिक का कनिष्ट पुत्र बहिल-कुमार अपने ज्येष्ठ भ्राता कुणिक से बचने के लिए चेड़ाम की शरण गया था। चेडाम में इतनी शक्ति न थी कि वह कुणिक से लड़ता परन्तु बहिलकुमार की रक्षा के लिये चेडाम ने कुणिक से सग्राम करते हुए अपने प्राण खो दिये। मेघरथ राजा ने एक कबूतर के लिए अपने शरीर का मांस भी काट दिया था। मतलब यह कि शरणागत की रक्षा और सहायता करना वीर लोग अपना परम कर्तव्य मानते है। इस कर्तव्य का पालन करने के लिये ही महाभारत युद्ध में अनेक राजा लोग कौरव-पांडवो की सहायता के लिये आये थे। कौरवो और पांडवों के युद्ध से किसी दूसरे की हानि न थी, न किसी एक के जीतने से दूसरे राजाओं को विशेष लाभ ही था परन्तु वे वीरोचित कर्तव्य से विवश थे। जो लोग भय से, उपेक्षा से, शत्रुता के कारण या किसी और कारण से शरणागत की रक्षा तथा सहायता मांगनेवाले की रक्षा नही करते, वे वीर

नही किन्तु वीर-कलक माने जाते है । ऐसे लोगों की गणना कायरो मे होती है । वीर कहलाकर ही इस पवित्र कर्तव्य को पददलित करनेवाले ससार मे अपयश के भागी होते है।

रुक्मिणी ने भी कृष्ण की शरण ली है । उसने भी कृष्ण से सहायता चाही है। कुशल पुरोहित उसकी प्रार्थना लेकर कृष्ण के पास गया है । अब देखना यह है कि रुक्मिणी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण वीरोचित कर्तव्य का पालन कैसे करते हैं।

सेना के घेरे से निकल कर कुशल द्वारका को चला। कुशल को मार्ग मे न मालूम कोई शीघ्रगामी वाहन मिल गया, किसी देवता की सहायता मिल गई या आवेश मे वह स्वयं ही वेग से चला । कुछ भी हुआ हो, वह आशा से अधिक शीघ्र द्वारका पहुँच गया । ठीक समय पर द्वारका पहुँच जाने के कारण उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । वह विचारता था कि अब श्रीकृष्ण रुक्मिणी की सहायता करे या न करे, मैं ठीक समय पर अपना कर्तव्य पूरा कर दूगा । हर्षपूर्वक रत्नमयी द्वारका नगरी की शोभा देखता हुआ और भूतल पर स्वर्ग-सी रमणीया द्वारका नगरी को देखने का सुअवसर प्राप्त होने से अपने भाग्य की सराहना करता हुआ कुशल राजभवन की ओर बढता जा रहा था । चलते-चलते वह राजद्वार पर पहुँचा । उसने द्वारपाल को आशीर्वाद देकर उससे कहा कि आप श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर दीजिये कि एक विदेशी दूत किसी अत्यावश्यक कार्य से भेंट करने आया है ।

आज का-सा समय होता तब तो द्वारपाल कुशल को

द्वार पर खडा भी न रहने देता किन्तु कहता कि अपना विजिटिंग कार्ड दो, सेक्रेटरी मुलाकात का प्रबन्ध करेंगे। सेक्रेटरी के पास विजिटिंग कार्ड पहुँच जाने पर वह भी घटो खबर न लेता और जब मिलता तब आकाश-पाताल की सब बाते पूछकर सभवत' आप ही श्रीकृष्ण के सामने सब मामला पेश करता तथा दो चार दिन या अधिक मे कुशल को उत्तर देता। कुशल को श्रीकृष्ण के पास तक न पहुँचने देता। लेकिन श्रीकृष्ण के यहाँ का प्रबन्ध आज के राजाओ के प्रबन्ध की तरह न था। उनके पास एक छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी जा सकता था। द्वारपाल तो केवल इसलिए रहता था कि कौन व्यक्ति आया है इसकी सूचना कर दे, जिससे उसके बैठने या स्वागत का कोई विशेष प्रबन्ध करना हो तो किया जा सके। साथ ही कोई व्यक्ति ऐसे समय मे न आ जाये, जबकि किसी प्रकार का कार्य विशेष किया जा रहा हो।

श्रीकृष्ण से कहने के लिए द्वारपाल को कुशल ने जो कुछ कहा था, द्वारपाल ने कृष्ण के पास जाकर वह सब निवेदन कर दिया। कृष्ण ने द्वारपाल को आज्ञा दी कि उस दूत को सम्मान-पूर्वक ले आओ। कृष्ण की आज्ञा पाकर द्वारपाल कुशल को सम्मान-पूर्वक श्रीकृष्ण के पास ले गया। कुशल ने कृष्ण को आशीर्वाद दिया। कृष्ण ने भी कुशल को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। कृष्ण से आसन पाकर कुशल गम्भीरता-पूर्वक बैठ गया।

कुशल को शान्त होने देकर श्रीकृष्ण उससे पूछने

लगे — कहिये ब्राह्मण, आपका आगमन कहाँ से हुआ ?

कुशल - मैं विदर्भ देश की राजधानी कुन्डिनपुर से आया हूँ ?

कृष्ण—राजा भीम और उनका परिवार तो सकुशल हैं न ?

कुशल—हाँ महाराज, मैं आया तब तक तो सब कुशल ही थी परन्तु अकुशल के बादल छा रहे थे। अकुशल बर-सने से पहले यदि आपने उन बादलो को छिन्न-भिन्न कर दिया तब तो कुशल ही बनी रहेगी अन्यथा अकुशल अवश्य-भावी है।

कृष्ण—कहिये ऐसी कौन-सी बात है ? आप अपने आग-मन का कारण सुनाइये। मैं अपने योग्य कार्य को करने के लिए सदैव तत्पर हूँ।

कुशल ने विचार किया कि सभा में सभी प्रकार के लोग होते है। सभी के विचारो में समता नही होती और विचारभिन्नता मिटाने के लिये अवसर की आवश्यकता हुआ करती है। एक व्यक्ति को समझाने मे विलम्ब या कठिनाई नही होती परन्तु अनेक व्यक्तियो को समझा कर एक निश्चय पर लाना कठिन होता है। रुक्मिणी ने भी मुझ से कहा था कि अवसर देख कर बात करना। नीति के अनुसार भी कोई गुप्त या विचारणीय बात एकदम से सभा में न कहनी चाहिए।

इस प्रकार विचार कर कुशल ने श्रीकृष्ण से कहा—क्या सभा मे ही ? कुशल के उत्तर से कृष्ण समझ गये कि

दूत चतुर है, अपनी बात सभा मे नही कहना चाहता किन्तु एकान्त मे कहना चाहता है। उन्होने कुशल से कहा—अच्छा एकान्त मे चलते हैं । यह कह कर कृष्ण वलदेवजी को साथ लेकर सभा से उठ गये और कुशल सहित मन्त्रणागृह में आये ।

मन्त्रणागृह मे बैठकर श्रीकृष्ण ने कुशल से कहा—हाँ आपको जो कुछ कहना है, कहिये । कुशल ने रुक्मिणी का पत्र श्रीकृष्ण को दे दिया। कुशल का दिया हुआ पत्र लेकर कृष्ण उसे पढने लगे । पत्र पढते-पढते ही कृष्ण को रोमांच हो आया। रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण की भुजाएँ फरकने लगी, फिर भी उन्होंने गम्भीरता नही त्यागी किन्तु वलदेवजी को पत्र देकर उनसे कहा कि यह पत्र आप भी पढिये और कहिये कि अपने को क्या करना चाहिए !

वलदेवजी ने भी रुक्मिणी का पत्र पढा। पत्र पढकर वे श्रीकृष्ण से कहने लगे कि इस विषय में विशेष विचारणीय कौन-सी बात है ? अपना कर्तव्य स्पष्ट है । शरणागत की रक्षा और असहाय की सहायता करना अपना कर्तव्य है। यदि हम इस कर्तव्य-पालन के विमुख रहते हैं तो क्षत्रियकुल को दूषित बनाते है । हम यदुवशी हैं । शरणागत की रक्षा के लिए हम एक वार मृत्यु का भी सामना करेंगे लेकिन शरीर मे प्राण रहते शरणागत को कदापि न त्यागेंगे । यदि हम शरणागत की और विशेषत शरण आई हुई कन्या की रक्षा न करें तो हमारी वीरता को, हमारे पुरुषत्व को और हमारे क्षात्रत्व को कोटि-कोटि धिक्कार है । हमारी गणना

अधम-से-अधम में होगी यदि हम रुक्मिणी की रक्षा न करेंगे। आप इस विषय में विशेष विचार मत करिये किन्तु कुन्डिनपुर चलकर रुक्मिणी की रक्षा करिये। आपके साथ मैं भी कुन्डिनपुर चलूगा।

यद्यपि वलदेवजी ने कृष्ण की मनभाती बात कही थी परन्तु नीतिज्ञ कृष्ण प्रत्येक वात को स्पष्ट कर लेना आवश्यक समझते थे। इसी दृष्टि से उन्होने बलदेवजी से कहा—भ्राता, यद्यपि आप जो कुछ कह रहे है वह सर्वथा उचित है लेकिन इस वात को न भूलना चाहिए कि दूसरी ओर शिशुपाल है जो भुआ का लडका भाई है।

बलदेवजी –भैया, क्या अत्याचारी भाई दण्ड का पात्र न माना जायेगा ? न्याय के सन्मुख पिता, माता, भ्राता, भगिनि आदि कोई चीज नही है। न्याय कहता है कि चाहे पिता हो या पुत्र, वहिन हो या भाई और माता हो या पत्नी, कोई भी हो जो अन्याय करता है उसे दण्ड देना ही चाहिए। न्याय के समीप पक्षपात नही चल सकता।

कृष्ण—अच्छी बात है, चलिये तैयारी कराइये परन्तु इतने अल्प समय मे कुन्डिनपुर पहुँचेगे कैसे ?

वलदेवजी –पहुँच जायेगे। कैसे भी पहुँचे परन्तु पहुँचेगे अवश्य। अधिक धावा करके पहुँचेगे। अव विलम्ब करना ठीक नही, इसी समय प्रस्थान कर देना अच्छा है।

श्रीकृष्ण ने वलदेवजी की बात स्वीकार की। उन्होंने कुशल से कहा—.लो महाराज आपके आगमन का उद्देश्य

पूरा होगया न ?

कुशल—मेरा उद्देश्य तो आपके दर्शन होते ही पूरा हो गया।

कृष्ण—अब आप जल्दी से स्नान, भोजन कर लीजिये, तब तक मै रथ तैयार कराता हूँ।

कृष्ण ने सेवको को कुशल के स्नान, भोजन का प्रबन्ध करने और रथ तैयार करने की आज्ञा दी। कुशल स्नान, भोजन से निवृत्त हुआ तब तक श्रीकृष्ण का गरुडध्वज रथ भी तैयार होकर आगया। रथ मे श्रीकृष्ण के समस्त आयुध प्रस्तुत थे और रथ के सारथी थे स्वय बलदेवजी। कुशल को लेकर कृष्ण रथ मे बैठे और रथ कुन्डिनपुर की ओर चला।

आज विवाह का दिन है। सब ओर खूब चहल-पहल है। रुक्म के प्रबन्ध से रुक्मिणी की—विवाह करने से इन-कार करने की—बात राजपरिवार और उससे सम्बन्ध रखने वाले कुछ व्यक्तियो के सिवा किसी को मालूम नही होने पाई है। वह चाहता है कि मै भीतर-ही-भीतर रुक्मिणी को बलात् शिशुपाल के साथ विवाह दू और बाहर प्रजा को रुक्मिणी का बलात् विवाह करने की खबर न होने दू। इस उद्देश्य से वह खूब धूमधाम करा रहा है। शिशुपाल की बारात मे भी खूब राग-रग हो रहा है। इस प्रकार सब ओर आनन्द-ही-आनन्द दिखाई देता है परन्तु रुक्मिणी के हृदय मे अपार दुःख है। वह आज अपनी मृत्यु का दिन समझ रही है। वह विचारती है कि आज इन दुष्टो के अत्याचार से बचने

के लिये मुझे अपने प्राण विसर्जन करने पड़ेंगे। रुक्मिणी को खाना, पीना, सोना, बैठना कुछ नही सुहाता है। वह इसी चिन्ता मे डूबी हुई है कि मै अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा कर सकूगी या नही ! उसकी आखों के सामने रुक्म और शिशु-पाल की वीभत्स मूर्ति अत्याचार का ताण्डव दिखा रही है। कृष्ण के पास पत्र देर से भेजा गया है, इसलिए वे समय पर आ जायेंगे, इसका उसे विश्वास नही है। उसे कभी-कभी यह भी सन्देह हो जाता है कि कही पत्र सहित कुशल पकडा न गया हो। और मेरे कारण उसको काल के हवाले न कर दिया गया हो। कृष्ण के आने मे सन्देह होने पर भी रुक्मिणी उनकी ओर से सर्वथा निराश नही है। उसके हृदय मे सन्दिग्ध आशा है। वह उस सदिग्ध आशा के सहारे ही अपने हृदय को धैर्य दे रही है। जव निराशा का आधिक्य होता है तव तो रुक्मिणी व्याकुल हो जाती है और जव आशा निराशा को दवा देती है तव रुक्मिणी के हृदय को कुछ धैर्य हो जाता है। वह आशा और निराशा के वीच मे ही उलझी हुई है। वीच-वीच मे भुआ से उसकी आशा को उत्तेजन मिल जाता है लेकिन रुक्म का क्रोध उसे भयभीत भी वना रहा है। उसका हृदय किसी भी प्रकार धैर्य धारण नही करता।

अपनी सन्दिग्ध आशा के आधार पर रुक्मिणी महल की छत पर बैठी है। उसकी आँखें द्वारका के मार्ग पर लगी हुई है। कभी-कभी उसके हृदय मे यह विचार भी हो आता है कि क्या मालूम श्रीकृष्ण मुझ अभागिनी के लिए आने का

कष्ट करेंगे या नही ! कही वे द्वारका से बाहर तो न गये होगे ! यदि मेरा पत्र उनके पास समय पर पहुँच ही गया होगा तव भी कही बलदेवजी आदि उन्हें आने से मना तो न कर देगे ! रुक्मिणी के हृदय मे जब निराशा का जोर बढता है तब वह इसी प्रकार के अनेकों सन्देह मे डूब जाती है परन्तु जब आशा का जोर बढता है-तब वह सोचती है कि मै ऐसी अभागिनी तो नही हूँ कि जो मुझे आत्म-हत्या करनी पड़े । मै किसी कायर पुरुष की शरण नही गई हूँ किन्तु एक महापुरुष की शरण गई हूँ । वे दयालु है । करुणानिधान है । वे शत्रु पर भी दया करते है तो मै तो एक अबला नारी हूँ ! मुझ पर दया क्यो न करेंगे ! अवश्य ही दया करेंगे । कदाचित् मेरे लिए वे आने का कष्ट न भी करते परन्तु अपनी विरद की रक्षा के लिए तो वे अवश्य ही आयेंगे । वलराम आदि प्रमुख यादव भी उन्हे एक अनाथा की रक्षा करने से कदापि न रोकेंगे । बल्कि वे मेरी रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण को प्रेरणा करके यहा भेजेंगे और आश्चर्य नही कि वे स्वय भी साथ आवे ।

इस प्रकार अनुकूल-प्रतिकूल विचार करती हुई रुक्मिणी ने सोचा कि मै कृष्ण के आने, न आने के विषय मे इतने सन्देह मे क्यो पड रही हूँ ? मै अपने कृत-कर्म पर से ही निश्चय क्यो न कर लू कि श्रीकृष्ण आयेंगे या नही ! यदि मैने दुष्कर्म किये होगे तव तो श्रीकृष्ण आ ही कैसे सकते है । मुझे अपने दुष्कर्मो का फल भोगना ही पड़ेगा और

यदि मैने दुष्कर्म नही किये तो फिर श्रीकृष्ण को अवश्य ही आना होगा। अपने कार्यों की आलोचना करने पर मुझे अपना भविष्य आप ही मालूम हो जावेगा।

रुक्मिणी अपने पापो की आलोचना करने लगी। वह कहने लगी कि जहाँ तक मुझे याद है मैने जान-बूझकर कभी किसी निरपराधी जीव को नही सताया। कभी झूठ का प्रयोग नही किया। कभी किसी की चीज नही चुराई। ये तो बडे-बडे पाप हुए। लोग इन बड़े पापों पर ध्यान देते है परन्तु उन छोटे पापों पर ध्यान नही देते जो वैसे तो छोटे कह-लाते है परन्तु वास्तव मे परम्परा पर इन बडे अपराधों से भी भयकर होते है। मै उन छोटे अपराधो की भी आलो-चना करके देखती हूँ कि मुझसे ऐसे पाप भी हुए है या नहीं।

मैने अतिथि का कभी भी अनादर नहीं किया। उनको भोजन करा कर ही भोजन करती रही और शक्ति भर उनकी सेवा भी करती रही। मेरे यहाँ से कभी कोई भिक्षुक निराश भी नही गया। मै याचक को सदा सन्तुष्ट ही करती रही हूँ। मैंने अपने पाले हुए पशु-पक्षियों को केवल सेवको के ही भरोसे कभी नही छोड़ा। उनके खान-पान और उनकी सेवा-शुश्रूषा की देखभाल स्वयं करती रही हूँ। मैने भोजन मे भी कभी भेदभाव नही किया। जो भोजन मैने किया वही अतिथि और सेवकों को भी कराया। यह नही किया कि मैने स्वय तो अच्छा भोजन किया हो और अतिथि या आश्रित सेवकों को वह अच्छा भोजन न कराया हो।

मैंने दूसरों के सामने कोई भी वस्तु उन्हें दिये बिना खाने का पाप कभी नही किया। मै जो भी वस्तु खाती हूँ वह उस समय यहाँ उपस्थित सेवक आदि लोगो को भी देती हूँ, अकेली कभी नही खाती। मैने कभी किसी के भोजन, आजीविका या आर्थिक-लाभ के कार्यो में विघ्न डालने का पाप नही किया। खाने-पीने या पहनने की वस्तुओ का मैंने कभी ऐसा संग्रह भी नही किया कि जो मेरे पास तो पडा-पडा नष्ट हो और दूसरे लोग उसके अभाव मे कष्ट पाये। मैंने अपने सेवको के साथ सदा मनुष्यता का ही व्यवहार किया है। उन्हे आत्मीयजनों के समान मानकर सदा संतुष्ट करती रही हूँ। उनसे कोई अपराध होने पर भी मैं न तो उन्हे कठोर दण्ड भी देती हूँ, न ताडना ही करती हूँ। मैने न तो उनको ऐसी प्रतिज्ञा मे ही बाँधा कि जिनके कारण वे अनैतिक आचरण करें और न अपने कार्य के लिए उन्हें अनैतिक आचरण करने को विवश ही किया और न कभी उनसे निकृष्ट सेवा ही कराई। इस प्रकार इस जन्म में तो मैने ऐसा कोई पाप नही किया है कि जिसके कारण मै कृष्ण-दर्शन से वचित रहूँ, हाँ पूर्व जन्म के पाप उदय हो और इस कारण श्रीकृष्ण मेरी खबर न ले तो यह बात दूसरी है।

द्वारका के मार्ग पर अश्रुपूर्ण नेत्र गडाये रुक्मिणी इसी प्रकार का ध्यान कर रही है। कभी-कभी भुआ उसका ध्यान भंग कर देती है। वह कहती है रुक्मिणी जरा धैर्य धर और विश्वास रख ! विश्वास बिना कोई भी कार्य सफल नही होता।

एकदम से निराश मत हो। आस्तिक लोग अन्त समय तक निराश नही होते। कुशल से पत्र पाते ही कृष्ण कुन्डिनपुर के लिए चल पड़े होंगे। वे अविलम्ब आ ही रहे होंगे। उनका गरुड़ध्वज रथ कही मार्ग में ही होगा। वे शरणागत-रक्षक है। शरणगत की रक्षा करना उनका विरद है। वे अपने इस विरद को कदापि कलकित न होने देंगे।

भुआ रुक्मिणी को इस प्रकार समझा रही थी और रुक्मिणी आँखो से जलधार वरसाती हुई द्वारका के मार्ग की ओर देख रही थी कि सहसा रुक्मिणी की वाम भुजा फरकी। इस शुभ शकुन से रुक्मिणी के हृदय को कुछ शान्ति मिली। इतने ही मे उसकी दृष्टि एक रथ की ध्वजा पर पड़ी। उसने भुआ से कहा—भुआ देख तो वह क्या दिखाई देता है ? क्या किसी रथ की ध्वजा है या मेरे को भ्रम हो रहा है ? रुक्मिणी के कहने से भुआ ने द्वारका के मार्ग की ओर देखा और वह रुक्मिणी से कहने लगी—ले रुक्मिणी अब तू चिन्ता छोड़कर प्रसन्न हो। वे देख श्रीकृष्ण ही आ रहे हैं। यह गगन-स्पर्शी गरुड़ चित्र अकित ध्वजा उन्ही के रथ की है। दूसरे किसी के रथ की ध्वजा पर गरुड़ का चित्र नही है।

भुआ की वात सुनकर रुक्मिणी के हृदय मे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। फाँसी पर चढ़ते हुए व्यक्ति को जीवित रहने की विश्वासपूर्ण आशा हो जाने पर जो प्रसन्नता होती है उस प्रसन्नता की तुलना तो उसी की प्रसन्नता से की जा सकती है। यही वात रुक्मिणी की प्रसन्नता के लिए भी है।

उसने एक बार ध्वजा को गहरी दृष्टि से देखा और उसे भुआ के कथन पर विश्वास हो गया। अब तो उसकी प्रसन्नता का कहना ही क्या था! वह आँखो के आँसू पोछ कर रथ की ओर देखने लगी। उस गरुड की ध्वजा वाले रथ को कुन्डिनपुर की ओर आते देखकर उसे अपनी रक्षा की पूर्ण आशा हो गई। उसने देखा कि रथ मे एक पीताम्बरधारी पुरुष बैठा है और उसके पास ही वह ब्राह्मण भी बैठा है जो मेरा पत्र लेकर गया था। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि इस रथ मे श्रीकृष्ण ही है जो कुशल के साथ मेरी रक्षा करने के लिए आये है। भुआ ने भी यह विश्वास करने मे उसकी सहायता की।

रुक्मिणी ने देखा वह रथ आते-आते जगल मे ही रुक गया। उसमे से उतर कर वृद्ध कुशल नगर की ओर आ रहा है और रथ प्रेमदा बाग की ओर जा रहा है। वह भुआ को लेकर प्रसन्न होती हुई अपने महल मे आई। अब उसे कुशल की प्रतीक्षा है। इसी बीच मे रुक्मिणी के मन मे एक और सन्देह हुआ। वह भुआ से कहने लगी—भुआ मेरी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण आये तो है परन्तु वे तो अकेले ही देख पडते है और यहाँ इन दुष्टो की बहुत ही अधिक सेना है! इस टिड्डीदल-सी अपार सेना से वे अकेले युद्ध करके मेरी रक्षा कैसे कर सकेगे! सेना ने सारे नगर को घेर रक्खा है। इस सारी सेना को जीतकर वे महल तक कैसे पहुँच सकेगे? कही मुझ दुष्टा के कारण उनके प्राण सकट मे न पड़ जावे!

यह कहती-कहती रुक्मिणी फिर दु.खित होगई। उसकी आँखो से आँसू गिरने लगे। रुक्मिणी की आँखों से आँसू पोंछती हुई भुआ कहने लगी—रुक्मिणी तुझे जो चिन्ता हुई है उसका तो यह अर्थ होता है कि या तो तू कृष्ण के बल-पराक्रम को समझ ही नही पाई है या तुझे उनके बल-पराक्रम पर विश्वास नही है ! तू जरा धैर्य रख। देख तो सही कि श्रीकृष्ण शिशु-पाल और रुक्म की सेना को किस प्रकार परास्त करके तेरी रक्षा करते है। अधिकाश सेना तो उनके पाँचजन्य शंख की ध्वनि से भयभीत होकर ही भाग जावेगी। फिर जब वे सुद-र्शन चक्र को हाथ में लेकर घुमावेगे तब पृथ्वी पर कौन ऐसा है जो उस चक्र के तेज के सन्मुख ठहर सके ! कौन ऐसा वीर है जो उनके सारंग धनुष से निकले हुए बाण का आघात सह सके ! किस जननी ने ऐसा वीर पैदा किया है जो कौमोद की गदा का प्रहार रोके। अकेले कृष्ण ही असंख्य सेना से युद्ध कर सकते हैं फिर भी सभव है कि पीछे दूसरे यादव भी आते हों। जरा ठहर तो ! घबराती क्यों है ! कुशल को तो आने दो।

भुआ रुक्मिणी को समझा चुकी थी कि इतने ही मे कुशल भी आ गया। कुशल को देखते ही रुक्मिणी उसके पाँवों पर गिर पड़ी। वह कुशल के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहती थी परन्तु हर्षावेश में उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। कुशल ने रुक्मिणी को उठाते हुए कहा—राजकुमारी ठहरो यह विलम्ब करने का अवसर नही है। अब विलम्ब अवाँछनीय है। विलम्ब करने से हित की हानि होगी। मैं तुमसे यह कहने आया

हूँ कि श्रीकृष्ण नगर से बाहर आ गये है। उनका रथ उसी प्रेमदा बाग में गया है जहाँ के लिये राजभगिनी ने कहा था। बलदेवजी भी साथ है। अब मैं जाता हूँ यहाँ अधिक ठहरने से किसी को सन्देह हो जावेगा और कार्य मे बाधा आ खड़ी होगी।

११ : पाणि-ग्रहण

इच्छित वस्तु या व्यक्ति के मिल जाने पर कैसी प्रसन्नता होती है इसे सभी लोग जानते हैं। केवल मनुष्यो को ही नही किन्तु पशु और पक्षियों को भी इच्छित व्यक्ति या वस्तु के मिलने पर प्रसन्नता होती है। यह ससार का नियम ही है। बल्कि जिस वस्तु या व्यक्ति के अभाव मे या उसकी प्राप्ति के मार्ग मे जितने अधिक कष्ट उठाने पडते है उस वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति पर उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार जिसके लिए जितने कम कष्ट उठाने पडते हैं उसकी प्राप्ति पर उतनी ही कम प्रसन्नता होती है। ताप-पीडित को छाया प्राप्त होने पर जो आनन्द होता है वह आनन्द उसी छाया के मिलने पर भी उसे नही होता जिसे छाया के अभाव में कष्ट नही उठाना पडा है। जिसका पेट भरा हुआ है उसे भोजन मिलने पर उतना आनन्द नही होता जितना भूखे को भोजन मिलने पर होता है। शीतकालीन वर्षा वैसी आनन्ददायिनी नही मानी जाती जैसी ग्रीष्मकालीन मानी जाती है। मतलब यह कि कोई भी वस्तु, कोई भी स्थान और कोई भी व्यक्ति तभी अधिक प्रिय लगेगा, उसकी प्राप्ति पर तभी अधिक प्रसन्नता होगी जब उसके अभाव में उसकी प्राप्ति के मार्ग में कष्ट उठाने पड़े हो। यह

बात और भी अनेकों उदाहरण से सिद्ध की जा सकती है।

रुक्मिणी को कृष्ण के वास्ते अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं। अनेक दुःख सहने के पश्चात् ही उसे यह सुनने को मिला है कि कृष्ण आये है। यद्यपि अभी उसे कृष्ण मिले नही हैं फिर भी जिस प्रकार प्यासे चातक को घन की गर्जना सुनकर ही अत्यन्त आनन्द होता है, उसी प्रकार रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के आगमन मात्र से आनन्द हुआ है। जब श्रीकृष्ण मिल जायेंगे तब की प्रसन्नता के लिए कहना ही क्या!

कुशल पुरोहित अपने घर गया। कुशल के जाने के पश्चात् रुक्मिणी भुआ से कहने लगी—भुआ आपने श्रीकृष्ण को नगर से बाहर प्रेमदा बाग मे किस उद्‌देश्य से ठहराया है? मैं उसके पास कैसे पहुँच सकूगी।

भुआ—रुक्मिणी अब तुझे किसी भी बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। मै सब कुछ कर लूगी। तू तो जैसा मैं कहूँ, वैसा करती जाना। अब तू अपने मे किंचित भी चिन्ता मत रहने दे, प्रसन्न रह।

रुक्मिणी की भुआ ने विचार किया कि इस समय मुझे भी वैसी ही नीति से काम लेना चाहिए, जैसी नीति रुक्म और शिशुपाल ने रुक्मिणी के साथ बरती है। इस समय कपटपूर्ण नीति के बिना काम होना कठिन है। दुष्ट लोग वैसे न मानेंगे, इसलिए मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए कि रुक्म और शिशुपाल तो यह समझकर प्रसन्न हों कि हमारी आशा पूर्ण हो रही है और मुझे रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के पास

पहुंचाने का मार्ग मिल जावे ।

इस प्रकार विचार कर भुग्रा अपनी भौजाई-रुक्मिणी की माता के पास गई । उसने रुक्मिणी की माता से कहा—भावज जी, लो रुक्मिणी को तेल उबटन लगाकर शृङ्गार कराओ । मैंने रुक्मिणी को समझा लिया है, वह अब शृङ्गार कर लेगी ।

भुग्रा की वात सुनकर रुक्मिणी की माता और राज-परिवार की अन्य स्त्रियों को वडा ही आश्चर्य हुआ । वे वहुत ही प्रसन्न हुई । रुक्मिणी की माता अपनी ननद से कहने लगी कि हम सव रुक्मिणी को समझाकर हार गईं, रुक्म भी रुक्मिणी से रुष्ट होकर चला गया, फिर भी रुक्मिणी नही मानी और आपने उसे किस प्रकार राजी कर लिया ?

भुग्रा—वह मानती कैसे ? मानना उसके वश की वात नही थी । अपन सव मूल में ही गल्ती कर रही थी, इसी से रुक्मिणी नही मानती थी । रुक्मिणी के न मानने मे देव-प्रकोप कारण था । अपने यहाँ की यह परम्परा है, कि जिस कन्या का विवाह होता है, वह सवसे पहले प्रेमदा वाग स्थित कामदेव यक्ष के मन्दिर में जाकर, कामदेव का आशीर्वाद लेती है और तव उस पर तेल चढता है । रुक्मिणी के विवाह में इस परम्परा का पालन नही हुआ, इसलिए वे कामदेव यक्ष ही विघ्न कर रहे थे । यह परम्परा मुझे भी अव तक याद नहीं आई थी, परन्तु सहसा याद आ गई । तव मैंने यक्षराज की प्रार्थना की कि जो भूल हो गई उसे क्षमा करें, मैं

रुक्मिणी को शृङ्गार करा कर आपके मन्दिर मे लाऊँगी और रुक्मिणी आपकी पूजा करके आपका आशीर्वाद प्राप्त कर लेगी तब उसका विवाह होगा। जैसे ही मैने यक्षराज की यह प्रार्थना की वैसे ही रुक्मिणी पर से उनका प्रकोप हट गया और रुक्मिणी की आकृति ही बदल गई। अब वह खूब प्रसन्न है। उसने शृङ्गार और विवाह करना भी स्वीकार कर लिया है। चलो अब विलम्ब न करो। यक्षराज के मन्दिर मे जाना है इसलिए रुक्मिणी को जल्दी ही शृङ्गार कराओ।

शिखावती—वास्तव मे यह बडी भारी भूल हुई थी और इस भूल के कारण ही रुक्मिणी को तथा हम सब को क्लेश भोगना पड़ा। प्रसन्नता की बात है कि आज आपको यह बात याद आ गई और शान्ति हुई।

शृङ्गार-सामग्री लेकर रुक्मिणी की माता-भौजाई आदि स्त्रिया मगल गाती हुई रुक्मिणी के महल मे आई। रुक्मिणी की प्रसन्नता देखकर उन सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे सब मगल गाती हुई रुक्मिणी को तेल उबटन लगा रही है परन्तु रुक्मिणी और उसकी भुआ अपने मन मे कह रही है कि यह तेल उबटन किसी और के लिए ही लग रहा है।

स्त्रियो ने रुक्मिणी को शृङ्गार कराया। रुक्मिणी की भावज आदि बीच-बीच मे रुक्मिणी की हँसी भी करती जाती है परन्तु रुक्मिणी थोड़ा मुसकरा देने के सिवाय और

कुछ नही बोलती। जैसे हृदय को प्रसन्नता ने मूक बना दिया हो।

थोडी ही देर मे रुक्मिणी के प्रसन्न होने और शृङ्गार कर लेने की बात रुक्म तथा शिशुपाल को भी मालूम हुई। इस समाचार के सुनने से दोनो ही को बहुत हर्ष हुआ। रुक्म तो विचारता था कि मेरी बात पूरी हुई। अच्छा हुआ कि रुक्मिणी मान गई। यदि वह न मानती और मैं जबरदस्ती उसका विवाह भी कर देता तब भी जानने वालो के लिए तो मैं अन्यायी ही ठहरा। अच्छा हुआ कि मेरी प्रतिज्ञा भी रह गई और मुझ पर कोई दूषण भी न लगा सकेगा। उधर शिशुपाल विचार रहा था कि रुक्म ने मुझे वचन दिया था, इसलिए वह अपनी बहन का विवाह तो मेरे साथ करता ही, परन्तु विवाह का वह आनन्द न मिलता जो अब मिलेगा। इसके सिवा जबरदस्ती विवाह होने पर वह दाम्पत्य-सुख भी न मिलता जो प्रसन्नता से विवाह होने पर मिलता है। इस प्रकार शिशुपाल और रुक्म अपनी-अपनी विजय मानकर प्रसन्न हो रहे है और रुक्मिणी अपनी विजय मानकर प्रसन्न हो रही है।

रुक्मिणी को शृंगार करा कर सब स्त्रियां उसे कामदेव यक्ष की पूजा कराने के लिए ले जाने को तैयारी करने लगी। भुआ ने रुक्मिणी की माता से कहा कि अब तुम रुक्मिणी को आशीर्वाद दो कि यह यक्षराज को प्रसन्न करके अपना मनोरथ पूर्ण होने का वर प्राप्त करे। भुआ विचारती है कि

रुक्मिणी की अपनी माता से विदाई है, इसलिए रुक्मिणी की माता से आशीर्वाद दिला देना चाहिए और इसी अभिप्राय से उसने रुक्मिणी की माता से आशीर्वाद देने के लिए कहा। परन्तु रुक्मिणी की माता इस बात को क्या जाने कि रुक्मिणी यक्ष पूजा के बहाने मेरे यहाँ से अपने पति के घर जा रही है और यक्ष पूजा से उसका अभिप्राय कृष्ण-पूजा है ! उसने प्रसन्नता-पूर्वक रुक्मिणी को आशीर्वाद देकर कहा—पुत्री, जाओ यक्षराज की पूजा करके उन्हे प्रसन्न करो और कामना पूर्ण होने का वरदान प्राप्त करो।

स्वर्ण थालों मे पूजा-सामग्री और पकवान आदि रखे गये। अनेक रथ तैयार होकर आये, जिनमे वस्त्राभूषण सजी हुई स्त्रियाँ मगल गीत गाती हुई बैठीं। रुक्मिणी को लेकर भुआ भी एक रथ मे बैठी और इनके रथ के पीछे-पीछे सब रथ नगर से बाहर के लिए चले।

सब रथ नगर के द्वार पर आये। द्वार पर शिशुपाल की सेना का पहरा था। शिशुपाल के सैनिकों ने रथों को रोक दिया और कहा कि नगर के बाहर जाने देने की आज्ञा नही है। सबसे आगे वही रथ था, जिसमें रुक्मिणी और उसकी भुआ बैठी थी। रथ रुकने पर रुक्मिणी की भुआ रोष जताती हुई शिशुपाल के सैनिको को कहने लगी कि—क्या तुम लोगों को मालूम नही है कि राजकुमारी यक्ष-पूजा के लिए जा रही है ? क्या तुमने नही सुना कि अब तक यक्षराज के प्रकोप से ही विघ्न पड़ रहा था और अब उनकी

कृपा से ही रुक्मिणी ने तेल उवटन लगवाया है ? तुम नही जाने देते तो लो हम सब लौट जाती है । इसमे हमारा क्या है, हानि तो तुम्हारे महाराजा की ही है ।

इस प्रकार कहकर भुआ ने रथ लौटाने की आज्ञा दी। भुआ की बाते सुनकर सैनिकगण यह विचारकर भयभीत हुए कि कही ये लौट गई और कोई अनर्थ हुआ तो हम लोग सकट मे पड़ जावेगे । उन्होने भुआ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि आप अभी रथ न लौटाइये, हम शीघ्र ही जाकर महाराज से इस विषय मे निर्णय किये लेते हैं । भुआ ने बडी कृपा और अनिच्छा दिखाते हुए सैनिको की यह प्रार्थना स्वीकार की । एक सैनिक शीघ्रता से शिशुपाल के पास गया। उसने सब समाचार शिशुपाल को सुनाया । शिशुपाल ने उत्तर दिया कि उन सबको जाने दो और तुम लोग भी उनके साथ जाओ, जिसमे किसी का विघ्न न होने पावे ! यक्षराज की पूजा कराकर, उन सबको अपनी रक्षा मे लौटा लाना । देखो बहुत सावधानी से रखना, किसी प्रकार का विघ्न न होने पाये ।

'जो आज्ञा' कर शिशुपाल का सैनिक नगर-द्वार पर आया । उसने भुआ से कहा कि महाराज ने यक्ष पूजा के लिए आप लोगों को जाने की स्वीकृति दी है, परन्तु रक्षा के लिए हम लोग भी साथ रहेगे । भुआ ने उत्तर दिया कि तुम लोग प्रसन्नता के साथ रहो, इसमें कौन-सी आपत्ति हो सकती है ?

रथ नगर-द्वार से बाहर हुए। शिशुपाल के सैनिक रथों को चारों ओर से घेरकर साथ-साथ चलने लगे। चलते-चलते जब रथ बाग के समीप पहुंचे, तब भुआ ने अपना रथ रुकवाकर साथ की स्त्रियों से कहा कि अब हम सबको बाग से बाहर ही ठहर कर रुक्मिणी को अकेली ही यक्ष-राज की पूजा करने के लिए जाने देनी चाहिये, जिसमें यह यक्षराज को प्रसन्न करके इच्छित वर माग सके। स्त्रियाँ अपने मनोरथ सबके सामने प्रकट नही करती है। उन्हें ऐसा करने मे लज्जा आती है। स्त्रियो के विशेषत. चार मनोरथ होते है। पहिला मनोरथ अचल सुहाग प्राप्त होने का होता है। दूसरा मनोरथ यह होता है कि हमे हमारा पति सम्मान दे। तीसरा यह मनोरथ होता है कि हमें सौत का दुख न हो और चौथा मनोरथ कल्याणकारी पुत्र प्राप्त होने का होता है। स्त्रियाँ अपने इस मनोरथ को एकान्त में ही प्रकट कर सकती है। इसलिए रुक्मिणी को अकेली जाने देनी चाहिये, जिससे यह यक्षराज के सन्मुख अपने ये मनोरथ प्रकट करके इनकी पूर्ति का वरदान प्राप्त कर सके। अपन साथ जावेंगी तो रुक्मिणी लज्जा मे पड़कर यक्षराज की पूरी तरह आरा-भी न कर सकेगी और अपने मनोरथ प्रकट करके उनकी पूर्ति का वरदान भी न मांग सकेगी। इस प्रकार थोडी देर की लज्जा इसके हित की घातिका होगी।

स्त्रियो ने भी भुआ की बात का समर्थन किया। भुआ ने रुक्मिणी के हाथ में पूजा-सामग्री का थाल दे दिया और

उससे कहा कि जाओ यक्षराज की आराधना करके उनको प्रसन्न करो और अपनी मनोकामना पूर्ण करो। रुक्मिणी समझ गई कि यह भुआ से विदाई है। वह अपनी भुआ के पांवों पड़ी। भुआ जान गई कि रुक्मिणी मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट करके कहती है कि आपकी कृपा से ही मैं यहाँ तक आ पाई हूँ, मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है और मेरी प्रतिज्ञा तथा मेरे जीवन की रक्षा हुई है। उसने रुक्मिणी को उठाकर उससे कहा—रुक्मिणी, मै तो पहले ही आशीर्वाद दे चुकी हूँ कि यक्षराज तुम पर प्रसन्न हों।

रुक्मिणी प्रसन्न होती हुई बाग में चली। शिशुपाल के सैनिक कहने लगे कि—ये अकेली कहाँ जा रही है ? हम भी साथ जावेगे ! भुआ ने उन सबसे कहा कि यक्षराज की पूजा एकान्त मे ही की जा सकती है और इसीलिए हम सब यही ठहर गई हैं। जब हम स्त्रियाँ भी वहाँ नही जाती है तब पुरुष तो जा ही कैसे सकते हैं ? यदि रुक्मिणी अकेली न होगी, कोई साथ होगा तो वह न तो खुले हृदय से यक्षराज की आराधना कर सकेगी, न इच्छित वर ही मांग सकेगी।

भुआ की बात सुनकर सैनिक भी ठिठक गये। उन्होंनें विचार किया कि यह अकेली लड़की जा ही कहाँ सकती है ? अपने सारे बाग को ही घेर लेते हैं फिर कहाँ जावेगी और कौन क्या कर सकेगा ? इस प्रकार विचार कर सैनिको ने प्रेमदा बाग को आसपास से घेर लिया।

रुक्मिणी यक्ष के मन्दिर पर पहुँची । कृष्ण-दर्शन के प्यासे उसके नेत्र कृष्ण के लिए इधर-उधर दौडने लगे । उसने देखा कि यक्ष का मन्दिर भी है, गरुड़ध्वज रथ भी खड़ा हुआ है परन्तु श्रीकृष्ण नही है ।

रुक्मिणी का प्रेम और उसकी भावना देखने के लिए श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये थे । कृष्ण को वहाँ न देख कर रुक्मिणी वहुत व्याकुल हुई । वह कहने लगी—हे माधव हे, दैत्यारि, आप कहाँ हो ? मै आपके लिए यहाँ आई और आप कहाँ हो ? हे वसुदेवनन्दन, क्या यह समय छिप जाने का है ? आपके न मिलने से मुझ दु खिनी के हृदय को अपार दु ख हो रहा है । आप मुझ पर दया करके शीघ्र ही प्रकट होइये । हे देवकीसुमन, आपका गरुडध्वज रथ वताता है कि आप है तो यहीं, फिर आप मुझे दर्शन क्यो नही देते ? हे हलधर अनुज, मैने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जो इतना सव हो जाने पर भी आपके दर्शन से वचित हूँ ! हे सारंगपाणि, कही दुष्ट शिशुपाल की सेना से भयभीत होकर आप छिप तो नही गये ? परन्तु ऐसा सभव नही । क्योकि आप तो भयनिवारक है, स्वय ही भयभीत कैसे हो सकते है ? हे सुभद्राजी के वीर, आपने मेरे में क्या दोष देखा है जो मुझे नही अपनाते हो ? हे श्याम, मै अव तक प्यासे चातक की नाँई आपके दर्शन की आशा लगाये थी, परन्तु अव जव दर्शन का समय आया, तव आप दर्शन क्यो नही देते ? हे रुक्मिणी-वल्लभ, यह रुक्मिणी आप ही की है । हे प्राणाधार, हे मेरे

नाथ, भुआ की कृपा से ही मुझे आपके दर्शन का शुभ योग मिला है और आपने भी कुशल से यह कहा था कि मैं रुक्मिणी को यक्ष मन्दिर मे मिलूँगा फिर अब आप प्रकट होकर धैर्य क्यों नही बँधाते ? हे स्वामी, आप मुझे मेरा अपराध तो बता दो, जिसमे मुझे सन्तोष तो हो ।

इस प्रकार बार-बार कह कर रुक्मिणी रुदन करने लगी । रुक्मिणी को व्याकुल और रुदन करती देख कर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के सामने आ खड़े हुए ! श्रीकृष्ण को देख कर रुक्मिणी का हृदय हर्ष से भर गया । हर्ष के मारे उसे रोमाच हो आया । उसने श्रीकृष्ण का दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल एवं अपनी कामना और अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण समझा । वह श्रीकृष्ण को देखकर हाथ जोड़ लज्जा के भाव से झुक कर खड़ी हो गई । हर्षावेग कम होने पर वह श्रीकृष्ण से कहने लगी, मैंने जब से नारदजी द्वारा आपकी प्रशसा सुनी तभी से मेरे हृदय मे आपके दर्शन करने की अभिलाषा थी । वह अभिलाषा आज पूरी हुई, मुझ अबला की रक्षा करने के लिए आपने बडा कष्ट उठाया । आपने ठीक समय पर पधारकर इन कष्टो से मेरा उद्धार किया और मेरी प्राण-रक्षा की । यदि आप आज न पधारे होते तो मेरे प्राण-पखेरू इस पिजर को छोड़कर उड जाते । अब आप इस दासी का पाणिग्रहण करके इसे अपनी सेवा का सौभाग्य प्रदान कीजिये ।

रुक्मिणी की बातें सुनकर कृष्ण विचारते थे कि मैंने

नारद द्वारा रुक्मिणी का चित्र देखा था । उस चित्र पर से ही मैने अनुमान कर लिया था कि रुक्मिणी जैसी सुन्दरी शरीर से है वैसी ही हृदय से भी सुन्दरी होगी । मेरा यह अनुमान बिल्कुल ठीक निकला । इस प्रकार विचारते हुए श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कहने लगे—राजकुमारी धैर्य धरो । मै तुम्हारे हृदय का प्रेम देखने के लिए ही अन्तर्धान हुआ था। मै जानना चाहता था कि रुक्मिणी मे जैसा सौन्दर्य है वैसा ही हृदय भी है या नही ! और एक स्त्री-रत्न मे जो विशेषता होनी चाहिए वह रुक्मिणी मे भी है या नही ! तुम मेरी इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुई । मेरे न मिलने पर यदि तुम चाहती तो मेरे लिए कटु-शब्द का प्रयोग कर सकती थी और कह सकती थी कि मैंने तो इतने कष्ट सहे और वे यहाँ भी मुझे न मिले ! हृदय हीन है, निठुर है आदि । परन्तु तुमने ऐसा न करके सच्चे प्रेम का परिचय दिया हे । सच्चा प्रेमी, अपने प्रेमास्पद के दोप तो देखता ही नही । उसकी दृष्टि तो प्रेमास्पद के गुणो पर ही रहती है । पतिव्रती-स्त्री और ईश्वर-भक्त मे तो यह वात विशेप रूप से होती है । मै तुम्हे पाकर प्रसन्न हुआ हूँ । तुमने मेरे लिए अनेक कष्ट सहे हैं । मै तुम्हारे प्रेम और तुम्हारी सहिष्णुता की प्रशसा किये विना नही रह सकता ।

रुक्मिणी और कृष्ण परस्पर इसी प्रकार की वाते कर रहे थे, इतने ही मे वहाँ वलदेवजी आ गये । वलदेवजी को देखकर कृष्ण सॅकोच करके रुक्मिणी के पास से यह कहते

हुए हट गये कि भ्राताजी आये। वलदेवजी को देखकर रुक्मिणी भी लज्जापूर्वक एक ओर खड़ी हो गई। वह टेढ़ी दृष्टि से हलधरजी की ओर देखने लगी और ऐसे जेठ की अनुज वधू वनने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण अपने को धन्य मानने लगी। वह अपने मन में कहने लगी कि इन्हे धन्य है जो मेरी रक्षा के लिए अपने छोटे भाई के सहायक वनकर आये हैं।

वलदेवजी ने आते ही श्रीकृष्ण से कहा—भैया, अव शीघ्र चलो, विलम्व मत करो। वलदेवजी की वात सुनते ही श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का पाणिग्रहण करके उसे रथ मे वैठाया और आप भी रथ में वैठ गये। रुक्मिणी और श्री-कृष्ण के वैठ जाने पर वलदेवजी ने रथ को उसी ओर चलाया जिस ओर से रुक्मिणी अपने साथ की स्त्रियों को छोड़कर वाग में आई थी।

कृष्ण के साथ रथ में वैठी हुई रुक्मिणी उसी प्रकार शोभा पाने लगी जिस प्रकार चन्द्र के साथ रोहिणी और इन्द्र के साथ इन्द्राणी शोभा पाती है। उसका हृदय आनन्द के मारे उछल रहा था। वह अपने को वड़ी सद्-भागिनी मान रही थी।

रथ वहाँ आया जहाँ रुक्मिणी के साथ की स्त्रियाँ खड़ी हुई थीं। रुक्मिणी को एक अपरिचित पुरुष के साथ रथ मे वैठी देख कर भुआ के सिवा सव स्त्रियाँ आश्चर्य करने लगी। रुक्मिणी की सखियाँ रुक्मिणी से कहने लगी—

सखी रुक्मिणी, तुम किस अपरिचित पुरुष के साथ बैठी हो और कहाँ जा रही हो ? तुम्हारे लिये हम यहाँ खड़ी हैं, महल में माता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी, विवाह की सब तैयारी हो चुकी है और तुम हम सब को छोड़कर कहाँ जा रही हो ? सखियो की बात सुनकर रुक्मिणी कहने लगी—सखियों, मैं रथ मे किसी दूसरे पुरुष के साथ नही बैठी हूँ, किन्तु अपने प्रियतम के साथ ही बैठी हूँ और वही जा रही हूँ, जहाँ ये ले जा रहे हैं। मेरे पति मुझे मिल गये इसलिये अब विवाह की तैयारी व्यर्थ है। तुम सब घर जाओ। यदि सम्भव हुआ तो फिर कभी अपना मिलन होगा। तुम माता से मेरा प्रणाम कहना और कहना कि रुक्मिणी की चिन्ता मत करो वह तो जिन्हे चाहती थी और अपने को जिनके अर्पण कर चुकी थी उनसे मिल गई। पिता से भी मेरा प्रणाम कहना और निवेदन करना कि रुक्मिणी को वही वर प्राप्त हुआ है जिसके साथ आप रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे। भाई से भी मेरा प्रणाम कहने के साथ ही कह देना कि अपने मित्र शिशुपाल को समझा कर घर लौटा दो, जिसमें उसकी अधिक हानि न हो। सखियों, मै तुम लोगों से विलग होती हूँ, इसके लिये मुझे क्षमा करना।

रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के रथ में बैठी देखकर रुक्मिणी की भुआ बहुत प्रसन्न हुई। उसने सकेत द्वारा रुक्मिणी से कुछ कहा और जब रथ आगे बढ़ गया, तब सब स्त्रियों के साथ वह भी नगर की ओर चली।

श्रीकृष्ण का रथ वहाँ पहुँचा जहाँ शिशुपाल के सैनिक खडे हुए थे । रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के साथ रथ मे बैठी देख कर सैनिक आश्चर्य मे पड गये । वे विचारने लगे कि यह पुरुष कहाँ से आ गया और राजकुमारी को कहाँ लिये जा रहा है ? वे कर्तव्य-विमूढ हो गये । इस बात का निश्चय न कर सके कि हमे क्या करना चाहिये । अन्त में कुछ सैनिक शिशुपाल को सूचित करने के लिये दौड़े ।

रथ आगे चला । इतने ही मे महर्षि नारद श्रीकृष्ण के रथ के सामने आ खड़े हुए । श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और बलराम ने नारद को प्रणाम किया । नारद श्रीकृष्ण से कहने लगे- वाह महाराज आप तो बड़े ही चोर हैं । जान पडता है कि बचपन मे खाने-पीने की चीजे चुराने की जो आदत थी वह बढ़ गई है और अब आप राजकन्या की भी चोरी करने लगे हैं । नारदजी की बात सुनकर श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और बलराम हँस पड़े । श्रीकृष्ण कहने लगे— नारजी आप तो आग लगाकर पानी के लिये दौड़ने वालों की सी बात कहते है । यह सब आपकी ही करतूत है और अब आप हमे ही चोर बना रहे हैं ।

नारद—यह तो ठीक है, परन्तु मैंने आपसे चोरी करने के लिए कब कहा था ? हाँ रुक्मिणी की रक्षा करने को अवश्य कहा था परन्तु रक्षा तो वही कर सकता है जो वीर और सामर्थ्यवान है । यदि इसी का नाम रक्षा हो तो इस प्रकार की रक्षा तो कायर और चोर भी कर सकते है ।

नारदजी की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने विचार किया वास्तव मे यदि मै रुक्मिणी को लेकर चुपचाप चला गया तो मेरी गणना चोरों मे होगी। इसलिए चुपचाप न चलकर शिशुपाल और रुक्म को सूचित कर देना चाहिए जिसमे उनके मन की बात मन ही मे न रह जावे और वे जो कुछ कर सकते हैं, वह कर ले। इस प्रकार विचार कर श्रीकृष्ण ने नारदजी से कहा—अच्छा लो, चोरों की भाति न ले जावेंगे। नारदजी से इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण ने अपना पाचजन्य शख उठाया। वे पाचजन्य शख को जोर से बजाने लगे, जैसे उसके द्वारा कह रहे हो कि 'हे शिशुपाल और रुक्म हम कृष्ण और बलदेव रुक्मिणी को लेकर जा रहे है। हम तुम्हे सूचित करते हैं जिसमे तुम यह न कह सको कि कृष्ण रुक्मिणी को चोरी से ले गये। यदि तुम दर्प रखते हो तो अपने सुभटो सहित शीघ्र आओ, हम यहाँ खड़े हैं।'

शिशुपाल की जो सेना वहाँ खडी थी, वह भी शख की घोर ध्वनि से भयभीत होकर भाग गई। कुन्डिनपुर नगर भी शख-ध्वनि से काप उठा। सब लोग भय और आश्चर्य के साथ विचार करने लगे कि यह शख-नाद किसका है और क्यों किया गया है।

उधर भुआ और सब स्त्रियाँ महल को आई। रुक्मिणी की सखियां हृदय से तो रुक्मिणी की आशा पूर्ण होने और उसे इच्छित पति मिलने के कारण प्रसन्न थी परन्तु ऊपर से उदास होकर रुक्मिणी की माता के सामने गईं। रुक्मिणी

की सखियों को उदास देखकर रुक्मिणी की माता ने उनसे पूछा कि तुम लोग उदास क्यों हो ? रुक्मिणी कहाँ है ?

सखियां—महारानीजी, राजकुमारी तो रथ में बैठकर चली गई !

शिखावती—किसके रथ में ?

सखिया—जिन्हें वे चाहती थीं और जिन्हें अपना पति बताती थी उन्ही श्रीकृष्ण के रथ में। राजकुमारी ने आपको प्रणाम कहकर आपसे निवेदन करने के लिए कहा है कि आप मेरी चिन्ता न करे। मुझे मेरे पति मिल गये और मैं उन्हीं के साथ जा रही हूँ। मैं यहाँ यक्ष की पूजा करने नही आई थी किन्तु अपने पति की पूजा करने आई थी।

शिखावती—तो क्या वह उस ग्वाले के साथ गई ?

सखिया—हाँ महारानी, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के रथ में बैठकर गईं। राजकुमारी जिस पुरुष के साथ गईं है वैसा पुरुष आज तक हमारे देखने में भी नही आया था। राजकुमारी की अभिलाषा उच्च ही थी। हम तो उस पुरुष का रूप, उसके मुख पर झलकने वाली गंभीरता और उसकी मधुर मुसकान देखकर थक-थकी-सी रह गईं। उस पुरुष के मुख पर भय या अभिमान का तो चिन्ह भी नही था।

शिखावती—रुक्मिणी की रक्षा के लिए तो सेना भी गई थी फिर वह कृष्ण वहाँ कैसे आ गया ?

सखिया—हाँ, सेना तो गई थी फिर भी कृष्ण कहाँ से और कैसे आ गये यह हम नही जानती। हम सब बाग के

बाहर खड़ी रही थीं और राजकुमारी अकेली ही यक्षराज की पूजा करने गई थी। परन्तु जब वे लौटी तब श्रीकृष्ण के रथ में बैठी हुई थीं। हमने उनसे कहा भी कि माता प्रतीक्षा करती होगी घर चलो, परन्तु उसने वही उत्तर दिया जो हम पहले ही आपसे निवेदन कर चुकी है। हा वे यह और कह गई है कि बेचारे शिशुपाल को जैसे-तैसे समझाकर विदा कर देना जिसमें उसकी दुर्दशा न हो।

शिखावती—रुक्मिणी की भुआजी कहाँ हैं ?

सखियां—वे अपने महल को गई।

शिखावती—जान पड़ता है कि उन्ही के षडयन्त्र का परिणाम है। चलो मैं उनके पास चलती हूँ।

रुक्मिणी की सखियों के साथ शिखावती अपनी ननद के महल मे आई। वह रुक्मिणी की भुआ से कहने लगी—आप यह क्या कर आई ?

भुआ—जो उचित और न्याय !

शिखावती—मौर बांधे चन्देरीराज तो यहाँ बैठे हैं और रुक्मिणी दूसरे पुरुष के साथ विशेषतः एक ग्वाले के साथ जावे क्या यह उचित है ?

भुआ—अपने पति के साथ जाना सर्वथा उचित है फिर चाहे कितने ही अन्य पुरुष मौर बाधे क्यो न बैठे रहें।

शिखावती—तव तो जान पडता है कि रुक्मिणी के जाने में आपकी भी सहायता थी।

भुआ—नि.सन्देह मेरी सहायता थी। जव सव लोग एक

ओर हो गये, रुक्मिणी की सहायता करने वाला कोई न रहा तब क्या मै भी रुक्मिणी की सहायता न करती ? वास्तव मे मैंने रुक्मिणी की सहायता नही की है किन्तु सत्य और न्याय की सहायता की है। रुक्मिणी जब शिशुपाल को नही चाहती थी और कृष्ण को अपना पति मान चुकी थी तब उसे बलात् शिशुपाल के साथ विवाह देने को तैयार होना और श्रीकृष्ण से वंचित रखना क्या न्याय होता ? क्या आपने इस पर विचार किया था ? यदि नही तो फिर मै रुक्मिणी का साथ देकर अन्यायपूर्ण कार्य को असफल बनाने का उपाय क्यो न करती ?

शिखावती—आप तो घर की ही थी ! आपका हम सबसे विरुद्ध जाना क्या ठीक था ?

भुआ—यदि मेरा आपसे विरुद्ध जाना ठीक न था तो क्या आपका अपने पति से विरुद्ध जाना ठीक था ? आपसे विरुद्ध होकर रुक्मिणी का साथ देना यदि मेरे लिये अपराध है तो आपका अपराध मेरे अपराध से हजार गुना बढ़ कर है ! रुक्मिणी को साथ देने का मेरा कार्य मै तो अच्छा ही समझती हूँ आप चाहे अच्छा न समझें। मैं तो आपसे भी यही कहती हूँ कि जो होना था वह हो गया और उचित ही हुआ। अब भलाई इसी में है कि रुक्म को समझा दो जिस मे वह श्रीकृष्ण से युद्ध छेड़कर स्वयं को उस आग में भस्म करने के लिए न डाले। यदि रुक्म ने युद्ध किया तो पहले तो श्रीकृष्ण से विजय पाना ही कठिन है कदाचित श्रीकृष्ण

को जीत भी लिया तब भी आपकी कन्या का अनिष्ट होगा। रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण को चाहती है तब आपका बाधक होना किसी भी प्रकार उचित नही है।

ननद की बाते सुनकर शिखावती को चुप होना पडा। अब उसे यह भय हो रहा था कि कही रुक्म श्रीकृष्ण से युद्ध करके अपने प्राण न खो बैठे। साथ ही उसे पति के कथन के विरोध में सहायता देने का भी पश्चाताप हो रहा था।

१२ : युद्ध

किन्हीं दो व्यक्ति या दो समूह का पक्ष-विपक्ष में होकर परस्पर या एक पक्ष का दूसरे पक्ष पर प्रहार करना, मारना, काटना, हानि पहुँचाना युद्ध कहा जाता है। ऐसे युद्ध के लिये मनुष्य तभी तैयार होता है जब उसमे से सात्विक भावना निकल जाती है और उसके स्थान पर राजसी या तामसी भावना अपना स्थान जमा लेती है। मनुष्य में जब तक सात्विक भावना रहती है तब तक उसे चाहे कोई मार डाले, उसके शरीर को क्षत-विक्षत कर डाले या उसकी कोई बड़ी-से-बड़ी हानि कर डाले तब भी वह अपने मे प्रतिहिंसा की भावना कदापि न आने देगा। इसके विपरीत यानी सात्विक—भावना के अभाव में मनुष्य राग या द्वेष के वश होकर युद्ध के लिये तैयार होता है और युद्ध करता है।

युद्ध विशेषतः लालसा की पूर्ति के लिए ही होता है। फिर वह लालसा द्रव्य, भूमि या स्त्री की हो या यश, बड़ाई आदि की। परन्तु युद्ध का प्रधान कारण है लालसा ही। मनुष्य लालसा के वश होकर ही मनुष्य का भीषण रक्तपात करने-कराने को उतारू हो जाता है। यद्यपि कभी-कभी

किसी व्यक्ति या किन्ही व्यक्तियों को लालसा के अधीन व्यक्ति से अपनी या दूसरे की रक्षा करने के लिए भी युद्ध करना पडता है, परन्तु इस प्रकार के युद्ध का कारण भी है लालसा ही । यदि वह पहला व्यक्ति लालसा के अधीन न हुआ होता तो उस दूसरे व्यक्ति को रक्षा के नाम पर युद्ध क्यों करना पड़ता ?

युद्ध न्याय की रक्षा के लिये भी किया जाता है और अन्याय की वृद्धि के लिये भी । किसी भी कारण से हो और किसी भी लिये किया जावे, धार्मिक दृष्टि से हिंसात्मक युद्ध निन्द्य और त्याज्य है । प्रसंगवश युद्ध का वर्णन किया जावे यह बात दूसरी है, परन्तु कोई भी धार्मिक व्यक्ति या धर्मशास्त्र युद्ध का कदापि समर्थन नही करते ।

सैनिको के मुख से रुक्मिणी-हरण का समाचार सुनकर शिशुपाल ने युद्ध की घोषणा कर दी । शिशुपाल की सेना युद्ध के लिये तैयार हो गई । कृष्ण द्वारा अपनी बहन का अपहरण सुनकर रुक्म भी बहुत क्रुद्ध हुआ । वह भी कृष्ण को जीवित पकड़ लाने या मार डालने की तैयारी करने लगा ।

कुन्डिनपुर के प्रमुख नागरिकों ने विचार किया कि रुक्मिणी पहले से ही श्रीकृष्ण को चाहती थी । वह शिशुपाल को पति नही बनाना चाहती थी । फिर भी शिशुपाल को बुलाया और शिशुपाल बारात सजा कर आया । अब जब रुक्मिणी ने अपना इच्छित वर पा लिया है तब शिशुपाल

और रुक्म का कृष्ण से युद्ध करना ठीक नही है । यदि कृष्ण ने रुक्मिणी की इच्छा के प्रतिकूल उसका अपहरण किया होता तब तो श्रीकृष्ण का कार्य अन्याय कहा जाता और हम लोग भी श्रीकृष्ण के विरुद्ध होकर न्याय का साथ देते तथा श्रीकृष्ण को दण्डनीय मानते , परन्तु स्थिति इसके विपरीत है । रुक्मिणी स्वय ही श्रीकृष्ण को चाहती थी और उनके साथ गई है । अब शिशुपाल या रुक्म का श्रीकृष्ण से युद्ध करना निरर्थक और हानिप्रद है । यदि शिशुपाल युद्ध करने से रुक जावेगा तो फिर रुक्म भी युद्ध करने न जावेगा। इसलिए चलकर शिशुपाल को समझाना चाहिये । यदि हमारे समझाने से शिशुपाल मान गया तो जन-हत्या न होगी ।

इस प्रकार विचार कर प्रमुख नागरिक शिशुपाल के पास आये । कुन्डिनपुर के नागरिकों का आना सुनकर शिशु-पाल ने अनुमान किया कि कृष्ण अकेला ही आया है इस लिये उसी ने इन सब को मेरे पास भेजा होगा और मुझे समझाने का जाल रचा होगा । उसने नागरिकों को अपने सामने आने देने की स्वीकृति दी । शिशुपाल के सामने पहुँच कर नागरिकों ने उसका अभिवादन किया । शिशुपाल ने नागरिको से उनके आने का कारण पूछा । नागरिक कहने लगे—महाराज, न्याय कहता है कि कन्या वरे सो वर । कन्या का पति वही है जिसे कन्या अपना पति बनावे । इसके अनु-सार रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को अपना पति बना लिया है ।

रुक्मिणी कृष्ण की पत्नी बन चुकी है । ऐसी दशा मे अब युद्ध छेडकर मनुष्यो की हत्या कराने से क्या लाभ ? कदाचित आपने युद्ध मे विजय भी प्राप्त की तब भी जो आपको चाहती नही है उसे आप अपनी पत्नी कैसे बना सकते हैं ? इसलिए हमारी प्रार्थना है कि रुक्मिणी गई तो जाने दीजिये, हम आपका विवाह राजपरिवार की किसी दूसरी कन्या के साथ करा देंगे, लेकिन युद्ध मे बड़ी जन-हानि होगी इसलिए आप युद्ध रोक दीजिये । कृष्ण यदि रुक्मिणी को बलात् ले गये होते तब तो हम आपसे युद्ध रोकने को न कहते, परन्तु रुक्मिणी को कृष्ण बलात् नही ले गये है, अपितु रुक्मिणी स्वेच्छा से उनके साथ गई है ।

शिशुपाल—वाह, आप लोग मुझे खूब समझाने आये । आपको यह भी विचार नही हुआ कि हम यह बात किससे कर रहे है । यहाँ से टीका पहुँचने पर मै बारात सजा कर रुक्मिणी के साथ विवाह करने के लिए आया, अनेक राजा लोग मेरे साथ आये, अब युद्ध से भय खाकर मै तो दूसरी कन्या से विवाह करलू और जिसके लिए आया, उस रुक्मिणी को वह ग्वाला ले जावे । यह कैसे हो सकता है ? हम क्षत्रिय युद्ध से भय नही करते । उस ग्वाले को हम अभी ही पकड कर बाँधे लेते है । उसकी क्या ताकत है कि वह हमारी भावी-पत्नी को चुराकर भाग जावे ? रुक्मिणी तो हमारी है ही, रुक्मिणी के बहाने हमे अपनी शूरता दिखाने और अपने शत्रु कृष्ण को अधीन करने का जो सुअवसर मिला

है, उसे हम कदापि नही जाने दे सकते। फिर भी आप लोग आये है, इसलिए आप लोगों की बात रखने को हम इतना कर सकते है कि यदि वह ग्वाला रुक्मिणी को छोड देगा तो फिर हम न तो युद्ध ही करेंगे और न उसे मारेंगे ही। यदि आपको युद्ध रोकना ही है तो आप लोग जाकर उस ग्वाले को समझाओ। उससे कहो कि तू अकेला ही आया है। रुक्मिणी के विवाह के दहेज में प्राण क्यो देता है?

नागरिकों का प्रमुख—कृष्ण से हम कुछ कहें तो कैसे! रुक्मिणी ने स्वय ही उन्हें स्वीकार किया है फिर भी वे रुक्मिणी को चुराकर नहीं लिये जा रहे है। रही उनके अकेले होने की बात, लेकिन कृष्ण ने अकेले ही बड़े कार्य किये हैं। बचपन में कंस को अकेले ने ही मारा था। कालीनाग को अकेले ने ही मारा था और गोवर्द्धन पर्वत भी अकेले ने ही उठाया था। वे अकेले है फिर भी उन्हें जीतना कठिन है। इसीलिए हम कहते हैं कि व्यर्थ ही मनुष्यों का नाश मत कराइये। उनको यह तो मालूम हो ही गया होगा कि आप अपने साथ इतनी सेना लाये हैं और आप से युद्ध होने की आशंका उन्हें भी रही होगी, फिर भी वे अकेले ही आये तो अपने बल-पराक्रम के भरोसे पर ही आये होंगे।

शिशुपाल—उसे हम जैसे किसी शूर से काम नही पड़ा है, इससे उसका साहस बढ रहा है। हमसे मुकाबला होने पर उसे मालूम होगा कि किसी की भावी-पत्नी को चुरा ले जाना कैसा होता है?

नागरिक—रुक्मिणी को आप भावी-पत्नी कहते है तो हम इसका एक उपाय बताते हैं, जिससे यदि रुक्मिणी आप की भावी-पत्नी होगी तो आपको मिल भी जावेगी और युद्ध भी रुक जावेगा। हम रुक्मिणी के स्वयवर का प्रबंध कराते हैं। स्वयवर-मडप में आप भी बैठ जाइये और कृष्ण भी बैठ जावें। रुक्मिणी आप दोनों मे से जिसके गले में वरमाला डाल दे वही रुक्मिणी का पति हो।

शिशुपाल—वाह, बड़ी अच्छी युक्ति निकाली। रुक्मिणी जब कृष्ण के रथ मे ही बैठ गई तो अब वरमाला डालने में शेष ही क्या रहा ? हम बारात सजाकर आये है, इसलिये अब चाहे रुक्मिणी की इच्छा हो या न हो उसे हमारे साथ विवाह करना ही पडेगा। हम स्वयवर मे जाकर रुक्मिणी की वरमाला की प्रतीक्षा क्यो करे ? वह तो हमारी पत्नी है ही। हम अभी उस ग्वाले को जीतकर रुक्मिणी लाते है।

नागरिक—यदि आपको हमारी यह बात भी स्वीकार नही है और आप कृष्ण से युद्ध ही करना चाहते हैं तो आप और कृष्ण द्वन्द्व-युद्ध कर लीजिये। बेचारी सेना को मत कटवाइये, दोनों के युद्ध मे जो जीते वही रुक्मिणी का पति हो।

शिशुपाल—अब आप लोगो के आने का भेद खुल गया। मालूम हो गया कि आप लोग कृष्ण की ओर से ही आये हो। कृष्ण अकेला है। उसे मेरा भय है। इसी से वह चाहता है कि या तो युद्ध रुक जावे या स्वयवर कर लिया

जावे या जैसा मैं अकेला हूँ उसी तरह शिशुपाल भी अकेला हो जावे। लेकिन उसकी यह चाल किसी मूर्ख पर ही काम कर सकती है, उसकी चालाकी में, मैं नही फँस सकता। मेरे साथ ये सब योद्धा तमाशा देखने के लिये नही आये हैं। इनके होते हुए मुझे युद्ध करने की आवश्यकता भी क्या है? जान पड़ता है कि आप लोगों ने कृष्ण से घूस खाई है, इसी से उसका पक्ष लेकर आये हो। चलो, यहाँ से चले जाओ। युद्ध के शुभ मुहूर्त के समय आप लोगो की ऐसी बातें मैं नही सुनना चाहता।

नागरिक— हम तो इसलिए आये थे कि सेना सहित आप कृष्ण से युद्ध करके अपने को संकट में न डाले, परन्तु आप तो अपने ही गर्व में है। हम फिर कहते हैं कि कृष्ण से युद्ध करने पर आपको बड़ा ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस पर भी आप अपनी हठ नही छोड़ते है तो हम भी देखते हैं कि आप कैसे वीर हैं? और कृष्ण को जीतकर रुक्मिणी के साथ किस प्रकार विवाह करते है?

यह कहकर नागरिक अपने-अपने घर चले गये। शिशुपाल की सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी थी। युद्ध के बाजे बज रहे थे। चारण लोग वीरों को संग्राम के लिए उत्तेजित कर रहे थे। अपने सैनिकों और साथ के राजाओ से शिशुपाल कहने लगा कि आप लोग मेरे साथ आये और नगर को घेर कर सब तरह का प्रबन्ध भी किया, फिर भी यह दुर्घटना घटी ही। नीच कृष्ण न मालूम कहाँ से तथा

कैसे आ गया और यह षड्यंत्र न मालूम कैसे रचा गया ? अपने को पता भी न लगने पाया । जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब आप लोगों के होते हुए भी यदि वह ग्वाला रुक्मिणी को ले गया तो आप सबका आना तथा इतना प्रबध करना भी निरर्थक होगा और लोगो मे उपहास भी होगा ।

शिशुपाल की बात सुनकर शिशुपाल के सेनापति और इसके साथ के राजा लोग उससे कहने लगे—आप विश्वास रखिये, हम अभी कृष्ण को पकड़े लाते हैं । वह गोपियो का दूध, दही चुराते-चुराते, बड़ी चोरी भी करने लगा है, परन्तु आज उसे मालूम हो जावेगा कि चोरी का फल कैसा होता है ? उस दैत्य को दंड देने के लिए हम लोग बहुत है, इसलिए आप यही ठहरिये, आपको कष्ट करने की आवश्यकता नही है । यदि वह ग्वाला भाग न गया तो आज अवश्य ही हमारे द्वारा काल-कवलित होगा ।

शिशुपाल—हाँ, आप लोग ऐसे ही वीर है । अच्छा तो जाइये और अपनी वीरता दिखाइये ।

टिड्डीदल के समान शिशुपाल की सेना श्रीकृष्ण को पकड़ने चली । शिशुपाल की प्रचण्ड सेना आती देख कर रुक्मिणी बड़ी चिंतित हुई । वह विचारने लगी कि मुझ दुष्टा ने प्राणनाथ को सकट मे डालकर बड़ा ही अनर्थ किया है । इससे तो अच्छा यही था कि मै स्वय ही आत्महत्या कर लेती या माता मुझे जन्म देते ही मार डालती । आज मेरे ही कारण यह झगडा मच रहा है । यद्यपि ये दोनो

भाई वलवान हैं, लेकिन हैं तो दो ही व्यक्ति। इतनी सेना मे दो आदमियों का विजय पाना बहुत कठिन है। यद्यपि लोहा कठोर होता है फिर भी जलते हुए कोयले उसे गला ही देते है। इसी प्रकार वहुत आदमियो से केवल दो आदमी कब तक लड़ सकते हैं।

चिंता के कारण रुक्मिणी का मुख मुरझा गया। रुक्मिणी का मुर्झाया हुआ मुख देखकर कृष्ण ने उससे पूछा—राजकुमारी तुम उदास क्यों हो ? कही पिता का घर छूटने का तो दुःख नहीं है। यदि यही दुःख हो तो हम तुम्हें अपने पिता के यहाँ पहुँचा दे।

रुक्मिणी—किसी भी पतिव्रता स्त्री को पति के मिलने से जितनी प्रसन्नता होगी, उतनी प्रसन्नता पिता के घर रहने मे कदापि नही हो सकती। पतिव्रता पति के यहाँ अपना जीवन व्यतीत करने मे ही आनन्द मानेगी। मुझे पिता के घर छूटने का दुःख नही है, किन्तु इस वात की चिन्ता है कि मेरे लिए आप जैसे महापुरुष संकट में पड़ रहे हैं। लोग मेरे भाग्य की सराहना करते है, परन्तु वास्तव में, मैं अभागिनी हूँ और मेरे अभाग्य के कारण ही आपको इतनी वड़ी सेना से युद्ध करना पड़ेगा।

कृष्ण—मैं समझ गया। तुम शिशुपाल की सेना देख कर यह भय कर रही हो कि इस विशाल सेना से ये दो आदमी कैसे तो युद्ध करेंगे और कैसे विजय प्राप्त करेंगे ? परन्तु तुम इस वात की चिंता मत करो कि यह सेना वहुत

है और ये दो ही आदमी हैं। एक ही सूर्य बहुत से अंधकार को नष्ट कर देता है। तृण समूह को आग की जरा सी चिनगारी भी जलाकर भस्म कर देती है। इसी प्रकार हम भी इस सारी सेना को देखते-ही-देखते मार भगाते है।

कृष्ण की बात सुनकर रुक्मिणी को धैर्य हुआ। उस की चिन्ता दूर हुई, परन्तु कुछ ही देर बाद श्रीकृष्ण ने उसे फिर चिन्तित देखा। कृष्ण ने रुक्मिणी से पूछा—राजकुमारी तुम्हे फिर किस चिन्ता ने आ घेरा ? क्या मैं इस सेना को परास्त न कर सकूगा ?

रुक्मिणी—नही नाथ, आपका कथन सुनने के पश्चात् मुझे इस सेना की पराजय के विषय में किंचित भी सन्देह नही रहा, परन्तु अब मुझे इस बात की चिन्ता है कि मैं अभागिन पितागृह के नाश का कारण बनूंगी। स्त्री का कर्तव्य हे कि वह पतिगृह और पितागृह दोनो की कुशल चाहे और दोनो का कल्याण करे, परन्तु मैं इस कर्तव्य का पालन न कर सकूंगी।

कृष्ण—क्यो ?

रुक्मिणी—मेरा भाई रुक्म क्रोधी और हठी है। वह आप से युद्ध करने अवश्य आवेगा और इस कारण मै पितृ-गृहघातिकी कहाऊगी।

रुक्मिणी की बात सुनकर कृष्ण ने विचारा कि वास्तव मे रुक्मिणी का कथन ठीक है। एक सहृदय-स्त्री को इस प्रकार का विचार होना स्वाभाविक है। उन्होंने रुक्मिणी से

कहा—राजकुमारी, मैं तुम्हारी यह बात सुनकर और तुम्हारे सुन्दर विचार जानकर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें किसी भी प्रकार दुःखित नहीं करना चाहता, इसलिए तुम चिन्ता दूर करो। मैं रुक्म को न मारूंगा।

कृष्ण से अपने भाई की प्राण-रक्षा का विश्वास मिल जाने पर रुक्मिणी की चिता मिट गई। उसे प्रसन्नता हुई। इतने ही में शिशुपाल की सेना भी सामने आ गई। शिशु-की सेना को सामने देखकर श्रीकृष्ण ने फिर पांचजन्य शंख बजाया और अपना धनुष चढाकर उसे टंकारा। शख और धनुष की घोर ध्वनि से वहाँ की पृथ्वी काँपने सी लगी। सेना के अनेक आदमी तो उस ध्वनि से भयभीत होकर ही भाग गये। जिनमें कुछ अधिक साहस था वे आगे बढ़े और चारो ओर से श्रीकृष्ण को घेरकर मारो, पकड़ो आदि कहते हुए श्रीकृष्ण के रथ पर बाण वर्षा करने लगे।

शिशुपाल की सेना द्वारा छोडे गये बाणों को व्यर्थ करते हुए श्रीकृष्ण अपने वाणों से शिशुपाल की सेना को घायल करने लगे। शिशुपाल की सेना श्रीकृष्ण के कठिन बाण न सह सकी। सैनिक लोग श्रीकृष्ण के बाणों से घायल हो-होकर गिरने लगे। सेना को इस प्रकार नष्ट होते देख कर शिशुपाल का सेनापति सेना को उत्तेजित करता हुआ आगे वढा, परन्तु श्रीकृष्ण ने एक बाण से उसका मुण्डरुण्ड से भिन्न कर दिया। सेनापति के मरते ही शेष सेना रण-स्थल त्याग कर भागी। सेना को भागती देखकर श्रीकृष्ण

ने भी धनुष रख दिया और वे शंख द्वारा विजयघोष करने लगे ।

भागी हुई सेना शिशुपाल के पास गई । उसने सेना-पति के मारे जाने और सेना नष्ट होने का सारा वृतान्त शिशुपाल को सुनाया । सेनापति के मारे जाने का समाचार सुनकर शिशुपाल को बडा ही क्रोध हुआ । क्रोध के मारे वह अपने होंठ चबाने लगा । उसने शेष सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी और साथी राजाओं सहित स्वयं भी युद्ध के लिए तैयार हुआ ।

सेना सहित शिशुपाल रणस्थल में आया । श्रीकृष्ण का रथ वही खडा हुआ था । श्रीकृष्ण को देखकर शिशुपाल अपनी सेना को उत्तेजित करता हुआ कहने लगा कि मैं अपने सेनापति का बदला लेने के लिए कृष्ण, बलदेव को मारे बिना कदापि न छोडूंगा । शिशुपाल और उसकी सेना ने श्रीकृष्ण के रथ को चारो ओर से घेर लिया और रथ पर बाणवर्षा करने कराने लगा । अपने पर बाणवर्षा होते देखकर श्रीकृष्ण ने भी अपना धनुष उठाया । उसी समय बलदेव श्रीकृष्ण से कहने लगे—भैया, यद्यपि अपराधी होने के कारण शिशुपाल दण्ड का पात्र है, फिर भी यह भुआ का लड़का भाई है और आपने इसके ९९ अपराध क्षमा करने का भुआ को वचन दिया है । इसलिये इसको मारना मत । इसका अपमान ही इसके अपराध का पर्याप्त दण्ड है । बलदेवजी की बात स्वी-कार करते हुए श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि मै शिशुपाल का

वध न करूँगा ।

अपने सारंग धनुष द्वारा तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण छोड़कर श्रीकृष्ण शिशुपाल की सेना को काटने लगे । शिशुपाल की सेना प्रति क्षण घटने लगी । यद्यपि शिशुपाल अपनी सेना का उत्साह बढ़ाता जा रहा था, परन्तु अन्त में वह सेना को भागने से न रोक सका । उसकी बची बचाई सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भागी । शिशुपाल अकेला रह गया परन्तु वह भी अधिक देर तक न टिका रह सका । वह भी रण छोड़कर अपने डेरे को भाग गया । शिशुपाल और उसकी सेना के भागते ही श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख से विजय-नाद किया ।

शिशुपाल की हार का समाचार सारे नगर में फैल गया । रुक्म ने भी सुना कि शिशुपाल और उसकी सेना हार गई है । शिशुपाल की हार से रुक्म को समझ लेना चाहिये था कि जब अनेक साथी राजाओं सहित विशाल सेना का स्वामी शिशुपाल भी श्रीकृष्ण से हार गया है, तब मेरी क्या शक्ति है जो कृष्ण को जीत सकू । परन्तु क्रोध और अभि-मान के वशीभूत रुक्म को यह विचार कैसे हो सकता था ? रुक्मिणी को कृष्ण ले गये, यह समाचार सुनते ही उसने युद्ध की घोषणा तो करा दी थी और उसकी सेना भी एकत्रित तथा सुसज्जित थी । वह क्रोध करके कह ही रहा था कि उस निर्लज्ज ग्वाले को किंचित् भी लज्जा नही है । उसे यहाँ किसने बुलाया था ? वह विना बुलाये ही आया और भेद पाकर बहन को हरण किये जा रहा है । मैं आज पृथ्वी

पर से कृष्ण का नाम ही उठा दूगा ।

रुक्म इस प्रकार क्रोध कर रहा था, परन्तु शिशुपाल की सेना युद्ध कर रही है इसलिए कृष्ण से युद्ध करने नही गया था । वह सोचता था कि—शिशुपाल की और मेरी सम्मिलित सेना ने यदि कृष्ण को मारा या परास्त किया तो विजय किसकी सेना ने की, यह विवाद खड़ा हो जावेगा । इसलिए पहले देख लेना चाहिये कि शिशुपाल की सेना युद्ध में क्या करती है । फिर मै तो कृष्ण-विहीन पृथ्वी करूँगा ही ।

रुक्म ने जब यह सुना कि शिशुपाल और उसकी सेना कृष्ण से हार गई है, तब उसने अपनी सेना लेकर कृष्ण पर चढाई कर दी । उसने सेना द्वारा कृष्ण के रथ को घेर लिया और कृष्ण के सामने जाकर कहने लगा—अरे निर्लज्ज ग्वाले, तेरा साहस इतना बढ गया है कि तू मेरी बहन का हरण करे । ले अपने इस अपराध का फल भोग । यह कह कर रुक्म कृष्ण पर बाण बरसाने लगा और कृष्ण उसके तथा उसकी सेना के अस्त्र-शस्त्र निष्फल करने लगे । इसी बीच में अवसर पाकर श्रीकृष्ण ने रुक्म की सेना के सेनापति को मार गिराया तथा रुक्म के हाथ का धनुष काट डाला । धनुष कटने और सेनापति के मरने से, रुक्म को बहुत ही क्रोध हुआ । वह गदा लेकर रथ से उतर पड़ा और कृष्ण के रथ पर झपटा । उसने जोर से अपनी गदा श्रीकृष्ण के रथ पर मारी जिससे श्रीकृष्ण के रथ की ध्वजा टूट गई ।

कृष्ण ने विचार किया कि मैं रुक्मिणी को वचन दे चुका हूँ कि तुम्हारे भाई रुक्म को न मारूँगा और रुक्म कायरों की तरह भागने वाला नहीं है। ऐसी दशा में यदि इसे स्वतन्त्र रहने दिया तो यह अस्त्र-शस्त्र चलाना बन्द न करेगा। इस प्रकार विचार कर उन्होंने बलदेवजी को सैन की। कृष्ण का अभिप्राय जानकर बलदेवजी रथ से कूद पडे। उन्होंने झपटकर रुक्म को पकड़ लिया और उसे बंदी बनाकर रथ में डाल दिया। रुक्म के बन्दी होते ही उसकी सेना भी तितर-बितर होकर भाग गई।

१३ : अन्त में—

गुणवदगुणवद्वाकुर्वता कार्य मादौ ।
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।।
अतिरभस कृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः ।।

अर्थात्—काम करने वाले बुद्धिमान को काम के अच्छे बुरे परिणाम का विचार करके तब काम प्रारम्भ करना चाहिए । क्योंकि बिना विचारे अति शीघ्रता से किये हुए काम का फल मरणकाल तक हृदय को जलाता और उसमें कांटे की तरह खटकता रहता है ।

मनुष्य को कार्य के विषय मे न्याय, अन्याय और सत्य, असत्य देखकर कार्य के परिणाम पर विचार कर लेना उचित है । साथ ही सज्जनो और हितैपियों की भी सम्मति जान लेनी चाहिये और फिर जो कार्य न्याय तथा सत्य से अनुमोदित हो, जिसके करने में हितैषी और सज्जन लोग भी सहमत हो उस कार्य को करना तो अनुचित नही है लेकिन जो कार्य अन्याय-पूर्ण हो जिससे सत्य की हत्या होती है और जिसके विषय में सज्जनों तथा हितैषियों का विरोध हो वह कार्य कदापि न करना चाहिए । कार्य की अच्छाई-बुराई का निर्णय किये विना, उसके परिणाम पर विचार किये विना और सज्जनो

तथा हितैषियो की सहमति बिना हठ, मूर्खता, क्रोध या अभिमान वश किये गये कार्य से अभीष्ट फल प्राप्त नही होता, जीवन भर के लिए पश्चाताप ही रहता है, हानि भी उठानी पड़ती है और सज्जनों तथा हितैषियो के सहयोग से भी वंचित रहना पड़ता है। इसके विपरीत अर्थात् औचित्य तथा परिणाम पर विचार करके सज्जनो तथा हितैषियों की सहमति से किये गये कार्य का परिणाम प्राय. अच्छा ही होता है, कभी-कभी चाहे बुरा हो। कदाचित इस रीति से किये गये कार्य का परिणाम बुरा होता हो तब भी वैसी हानि नही होती न वैसा पश्चाताप ही होता है, जैसी हानि और जैसा पश्चाताप इसके विरुद्ध रीति से किये गये कार्य के दुष्परिणाम से होता है। नीतिकारों का कथन है—

सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितं
स्वयं च बुद्धिया प्रविचरिताश्रयम् ।
करोति कार्य्यंखलु यः स बुद्धिमान्
स इव लक्ष्म्या यशसांच भाजनम् ॥

अर्थात्—जो मित्र तथा आप्त पुरुषों से सलाह लेकर और अपनी बुद्धि से विचार कर काम करता है वह लक्ष्मी और यश का पात्र होता है।

नीतिकारो के इस कथन का दूसरा अभिप्राय यही होगा कि जो आदमी मित्र और आप्त पुरुषों से सलाह लिये बिना तथा अपनी बुद्धि से विचारे बिना काम करता है वह विपत्ति और अपयश का पात्र होता है। मनुष्य को उचित है कि

वह विपत्ति और अपयश के कार्य न करे।

कथा का उद्देश्य कार्य का परिणाम बताना ही होता है। अर्थात् यह दिखाना होता है कि अमुक व्यक्ति ने अमुक अच्छा कार्य किया तो यह परिणाम हुआ और बुरा कार्य किया तो यह परिणाम हुआ। कार्य का फल बताकर अच्छे कार्य मे प्रवृत्त होने और बुरे कार्य से निवृत्त होने का आदर्श-पूर्ण उपदेश ही कथा का ध्येय है। यह कथा भी ऐसे ही ध्येय की पूर्ति के लिए है। इसके द्वारा भी कार्य का उचित-अनुचित परिणाम ही बताया गया है। इसलिए अब देखते हैं कि इस कथा का अन्त किस परिणाम के साथ होता है।

भक्त लोग इस कथा को आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं। वे इस कथा पर आध्यात्मिक विचार करते है और इस कथा को आध्यात्मिक रूप देते है। वे कहते है कि हमे विवाह या युद्ध की आवश्यकता नही है, हमे तो इसमें से आत्म-कल्याण मे सहायक तत्त्व शोधना है। इसके लिए वे रुक्म को क्रोध, शिशुपाल को अभिमान, रुक्मिणी को सद्बुद्धि और कृष्ण को आत्मा मानते है। इस कथा में ये ही चार पात्र मुख्य हैं, शेप गौण है और ये मुख्य पात्र भक्तो की दृष्टि मे क्रोध, अभिमान, सद्बुद्धि और आत्मा के रूप है। उनका कथन है कि रुक्म रूपी क्रोध के आमन्त्रण पर, शिशुपाल रूपी अभिमान, रुक्मिणी रूपी सद्बुद्धि को अपनी अनुगामिनी बनाना चाहता है परन्तु रुक्मिणी रूपी सद्बुद्धि, कृष्ण रूपी आत्मा की शरण जाकर अपनी रक्षा चाहती है। रुक्मिणी रूपी सद्-

वुद्धि को चाहने वाला या उसकी रक्षा करने वाला कृष्ण रूपी आत्मा रुक्म और शिशुपाल रूपी क्रोध और अभिमान को परास्त करके रुक्मिणी रूपी सद्वुद्धि की रक्षा करता है, जो हमारे लिए मार्ग-दर्शक आदर्श है ।

यह तो उन भक्तों की दृष्टि हुई जिनका लक्ष्य केवल आत्म-कल्याण ही है, लेकिन साँसारिक परन्तु न्यायप्रिय लोग इस कथा को अपनी दृष्टि से देखते है । वे कथा के पात्रो को इसी रूप मे मानकर इस कथा को गार्हस्थ्य जीवन की मार्गदर्शिका समझते है । उनका कथन है कि यद्यपि माता-पिता और भाई को कन्या का विवाह करने, उसके लिए योग्य वर खोजने का अधिकार अवश्य है । लेकिन इस अधिकार का उपयोग, कन्या की रुचि और उसकी स्वीकृति की अपेक्षा रखता है जब तक कन्या की स्वीकृति प्राप्त न कर ली जावे तब तक उसका विवाह करने का अधिकार किसी को नही है । कन्या को उचित सम्मति देना, वंश मर्यादा की ओर उसका ध्यान खीचना और उसके हिताहित को उसके सामने रखना तो ठीक है परन्तु कन्या की रुचि की अवहेलना करना उसके अधिकार की उपेक्षा करना और बलात् उसका विवाह करना अन्याय है । रुक्म ने रुक्मिणी पर ऐसा ही अन्याय करना चाहा था । उसने रुक्मिणी की स्वीकृति और रुचि की अपेक्षा करने के साथ ही अपने वृद्ध तथा अनुभवी पिता की सम्मति की भी अवहेलना की थी और पिता का अपमान किया था । रुक्म का कार्य, पिता के प्रति पुत्र

का और वहन के प्रति भाई का जो कर्तव्य है, उसके विपरीत था, रुक्म की तरह रुक्म की माता ने भी अपना कर्तव्य भुला दिया था। उसे उचित था कि वह सबसे पहले अपनी कन्या की इच्छा जानती और फिर पति या पुत्र दोनों मे से उसकी वात का समर्थन करती, जिसकी वात कन्या की इच्छा के अनुकूल होती ' लेकिन उसने ऐसा नही किया। रुक्म की ही तरह शिशुपाल भी न्याय को ठुकरा कर अन्याय करने पर उतारू हुआ था। किसी भी पुरुष को न तो अधिकार ही है, न उनके लिए यह उचित ही है कि जो कन्या उसे नही चाहती उसके साथ वलपूर्वक विवाह करे और उस कन्या को उस पुरुष से वञ्चित रखे जिसे कि वह कन्या चाहती है। अभिमानवश शिशुपाल ने इस कर्तव्य की अवहेलना तो की ही, साथ ही अपने शुभचिन्तकों और श्रद्धेयजनो की शिक्षा को भी उसने नही माना। अन्याय करने और कर्तव्य की अवहेलना करने के कारण रुक्म, शिखावती और शिशुपाल दण्ड के पात्र हैं। यदि इन्हे दण्ड न मिलता तो रुक्मिणी तो अत्याचार का शिकार होती ही, किन्तु भीम, ज्योतिषी, नारद, भावज और शिशुपाल की पत्नी की सत्यानुमोदित वात का भी संसार पर वुरा प्रभाव पड़ता।

दूसरी ओर रुक्मिणी को यह अधिकार था कि वह मर्यादा की रक्षा करती हुई इच्छित पति प्राप्त करे। यदि उसके इस अधिकार की रक्षा न होती तो रुक्म और शिशुपाल के अत्याचार से उसे अपना निश्चय त्यागना पड़ता

या अपने प्राण खोने पड़ते तो इससे सत्य और न्याय को दूषण लगता। इसलिए उसकी रक्षा होना आवश्यक था। उसने कृष्ण की शरण ली थी इसलिए श्रीकृष्ण का कर्तव्य था कि वे शिशुपाल और रुक्म से रुक्मिणी की रक्षा करते।

कन्या के अधिकार, उनकी रक्षा और उन्हे लूटने के प्रयत्न का परिणाम बताने के साथ ही यह कथा गृहस्थ स्त्रियों को भी यह शिक्षा देती है कि रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को केवल मन और वचन से ही पति माना था, शरीर से तो उसने श्रीकृष्ण को देखा भी नही था। फिर भी रुक्मिणी ने कष्टों और प्रलोभनों के सामने मस्तक नही भुकाया और शिशुपाल को अपना पति बनाना स्वीकार नही किया तो जिन्होंने मन, वचन और काय तीनों से किसी पुरुष को पति बनाया है, उन स्त्रियों का कर्तव्य क्या है ? और उन्हे पति-व्रत की रक्षा के लिए कितनी दृढ़ता रखनी चाहिए उन मे कष्ट सहने की कितनी क्षमता होनी चाहिए और उन्हे प्रलो-भनों को किस प्रकार ठुकराना चाहिये।

इस प्रकार न्यायशील गृहस्थ इस कथा को न्याय-रक्षा की दृष्टि से देखते है और अन्यायी गृहस्थ इसे किसी और ही दृष्टि से देखते होंगे। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। पात्र वस्तु को अपने अनुकूल रूप मे ही ग्रहण करता है।

इस कथा में हम साधुओं को ग्रहण करने योग्य सार रुक्मिणी की दृढ़ता है। रुक्मिणी ने जो प्रण किया उसे तुड़वाने के लिए शिशुपाल और रुक्म ने अनेक प्रयत्न किये,

फिर भी वह अपने निश्चय पर से न डिगी। अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए कष्ट सहती रही, प्राण देने तक को तैयार हो गई परन्तु रुक्म के भय या शिशुपाल के प्रलोभन में पड़कर उसने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध शिशुपाल की पत्नी बनना स्वीकार न किया। यह दृढता हम साधुओ के लिए अनुकरणीय है। पतिव्रता का उदाहरण भक्तो के लिए भी मार्गदर्शक होता है।

तात्पर्य यह कि जो लोग कथा द्वारा किसी प्रकार की शिक्षा लेना चाहते हैं, उनके लिए यह कथा शिक्षा देने वाली है और जो इसे केवल उपन्यास जानते है उनके लिए उपन्यास ही है। यह तो अपनी-अपनी दृष्टि और अपनी-अपनी भावना पर निर्भर है। जिसकी जैसी दृष्टि और जैसी भावना होगी वह प्रत्येक बात मे से वैसा ही अभिप्राय निकालेगा। अब तो यह देखना है कि इस कथा अन्तिम परिणाम क्या है।

श्रीकृष्ण से परास्त होकर शिशुपाल अपने डेरे को भाग आया। वह विचारने लगा कि अब मै क्या करूँ? मुझे ज्योतिषी, भावज, नारद और मेरी पत्नी ने कुन्डिनपुर आने से रोका था। मेरी सम्मान की रक्षा के लिए भावज तो अपनी बहन का विवाह भी मेरे साथ करती थी, परन्तु मैंने न तो उनकी ही बात मानी, न और सब की ही। यहाँ के नागरिक भी मुझे समझाने आये थे। यदि नागरिको की बात मानकर भी मै युद्ध करने को न जाता तो न तो मेरी सेना ही नष्ट होती, न मुझे पराजय ही मिलती और न मेरा

अपमान ही होता । अब मैं चन्देरी भी कैसे जाऊँ । वहाँ के लोग मुझे क्या कहेंगे । मैं भावज को अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा ।

शिशुपाल इस प्रकार पश्चात्ताप कर रहा था । उसे चन्देरी लौट जाने में भी लज्जा हो रही, परन्तु साथ ही यह भी विचार होता था कि यदि चन्देरी न जाऊँ तो फिर कहाँ जाऊँ ? इतने ही में उसने सुना कि सेना सहित रुक्मकुमार ने कृष्ण पर चढ़ाई की है । यह समाचार सुनकर शिशुपाल को कुछ धैर्य मिला । वह विचारने लगा कि यदि रुक्मकुमार ने कृष्ण को जीत लिया तो वे निश्चय ही रुक्मिणी का विवाह मेरे साथ करेंगे और रुक्मिणी के साथ मेरा विवाह हो जाने पर चन्देरी जाने में वैसी लज्जा न होगी, जैसी लज्जा रुक्मिणी के बिना जाने में है । यद्यपि अपनी पराजय पर से शिशुपाल को यह आशा नही रखनी चाहिए थी कि रुक्म कृष्ण को जीतेगा; उसे सोचना चाहिए था कि जब मेरी विशाल सेना और सहायक राजाओं सहित मैं भी कृष्ण को जीतने में असमर्थ रहा तो रुक्मकुमार कृष्ण को कैसे जीत सकेगा । परन्तु स्वार्थ मे यह सब बातें नही दिखती । स्वार्थी मनुष्य को तो अपनी ही बात दिखती है । भीष्म, द्रोण, कर्ण प्रभृति बड़े-बड़े योद्धाओं को पांडवों ने मार डाला था, फिर भी दुर्योधन को शल्य से यह आशा थी कि शल्य पांडवों को जीतेगा । इसी तरह शिशुपाल भी रुक्म द्वारा कृष्ण की पराजय की आशा कर रहा था ।

शिशुपाल रुक्म की विजय की प्रतीक्षा करने लगा। उसे अब भी रुक्म की विजय के पीछे रुक्मिणी प्राप्त होने की आशा थी, लेकिन उसकी यह आशा अधिक देर न रही। कुछ ही देर बाद रुक्म की सेना नगर मे भाग आई। रुक्म के बदी होने का समाचार शिशुपाल ने भी सुना। यह समाचार सुनते ही शिशुपाल की सब आशा नष्ट हो गई। अब उसे कुन्डिनपुर में ठहरना भी बुरा मालूम होने लगा। उसे भय हो रहा था कि कुन्डिनपुर के नागरिक रुक्म के बन्दी होने का कारण मुझे ही बतावेगे और मुझे ही धिक्कारेगे। क्योकि वे मुझे समझाने आये थे, फिर भी मैने उनकी बात नही मानी और युद्ध छेड़ दिया।

अपनी बची-खुची सेना लेकर हृदय मे पश्चात्ताप करता हुआ शिशुपाल कुन्डिनपुर से निकल चला। उसके हृदय में यही विचार हो रहा कि मै चन्देरी किस प्रकार जाऊँ। वहाँ से मै बारात सजाकर सेना सहित बडी उमङ्ग से चला था और अब सेना नष्ट करा कर बिना विवाह किये ही वहाँ जाऊँगा तो लोग मुझे क्या कहेगे ? जब मै चला था तब तो नगर मे मगल-गान हो रहा था, लेकिन अब मेरे चन्देरी पहुँचने पर मृत सैनिको के आत्मीयजनो का रुदन सुनने को मिलेगा। उनकी स्त्रियाँ मुझे दुराशीष देगी। मै उन्हे क्या उतर दूगा ? भाभज जब मेरा ध्यान उस तरफ खीचेगी और अपनी कही हुई बातो का स्मरण करावेगी तब मै क्या कहूँगा ? हाय ! इस प्रकार अपमानित होकर चन्देरी जाने

से तो मर जाना ही अच्छा है। अब तक मैं वीर कहाता था, परन्तु अब कायर कहाऊँगा। मेरी पत्नी से मैं क्या कहूँगा ? यह कैसे कहूँगा कि मैंने तुम्हारी बात नही मानी उसका यह परिणाम हुआ ! मैं तो चन्देरी नहीं जाऊँगा। आत्महत्या करके अपनी जीवनलीला यही समाप्त कर दूगा और सबकी बात न मान कर अभिमान और हठ करने का प्रायश्चित करूँगा।

इस प्रकार विचार कर शिशुपाल ने अपने साथियों से कहा कि—तुम चन्देरी जाओ, मैं चन्देरी न आऊँगा, किन्तु यही मरूँगा। यह कह कर वह प्राण-त्याग के लिये उद्यत हुआ। शिशुपाल के मंत्री ने विचार किया कि इस समय शिशुपाल को बड़ा दुःख है। यदि समझाकर आत्महत्या से न रोका गया तो यह मर जावेगा। उसने शिशुपाल का हाथ पकड़ कर उससे कहा—महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं ? इस प्रकार प्राण-त्याग करना मूर्खों और कायरों का काम है। आत्महत्या करने से क्षति की पूर्ति भी तो नहीं हो सकती। वीरों को या तो जय मिलती है या पराजय। जो लड़ता है, वह कभी हारता भी है। जो कायर है, वह लड़ेगा ही नही तो हारेगा क्यों ? जय-पराजय अपने वश की बात नही है। कभी पराजय होती है और कभी जय होती है, आप जीवित रहें, यही प्रसन्नता की बात है। आप का जीवन है तो कभी यह पराजय ,जय के रूप में परिणत भी हो सकती है। आप आत्महत्या का कायरता पूर्ण विचार

त्यागिये। यदि आप ही ऐसी कायरता करेंगे तो इस शेष सेना और मृत सेना के परिवार वालों की क्या दशा होगी? आप इस सेना को धैर्य बधाइये। घायल सैनिको की सेवा-शुश्रुषा का प्रबन्ध करिये और मृत सैनिको के परिवार के लोगों को धैर्य देकर उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करिये। आत्महत्या करने से कोई लाभ नही है।

शिशुपाल पर मत्री के समझाने का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। वह चदेरी को चला, परन्तु लज्जा के मारे उसने दिन के समय नगर में प्रवेश नही किया, किन्तु रात को अधेरे में प्रवेश करके सीधा अपने महल में चला गया और मुँह ढाँक कर चुपचाप सो रहा। उसके हृदय में यही इच्छा हो रही थी कि कोई मुझ से न बोले और कुन्डिनपुर के विषय में न पूछे तो अच्छा।

शिशुपाल के परास्त होने और रुक्मिणी रहित लौटने का समाचार सारे नगर मे फैल गया। शिशुपाल की पत्नी और उसकी भाभी को भी सब हाल मालूम हुआ। भाभी बुद्धिमति और सज्जन-हृदय की स्त्री थी। उसने विचार किया कि जो होना था वह तो हो चुका, देवरजी ने मेरी बात नही मानी तो उसका फल भी उन्होने भोगा, अब अपनी प्रशसा और उनकी निन्दा के लिये उन पर व्यग करना या ताने देकर उन्हे दुःखित करना सज्जनो और हितैषियों का कामनही है, किन्तु शत्रु का काम है और उस शत्रु का काम है जिसमे गंभीरता नही है, अपितु जो ओछी प्रकृति का है। सज्जन का काम तो दुःखी को धैर्य देना ही है।

इस प्रकार विचार कर भावज शिशुपाल के पास गई। वह शिशुपाल से कहने लगी—देवरजी, आप इतने दुःखित क्यों हैं ? जो होना था वह हुआ, इसमें आपका कुछ दोष नहीं है। प्राणी कर्माधीन है। उसकी बुद्धि भी कर्माधीन ही होती है; इसलिए जैसे कर्म उदय में आते है, वुद्धि भी वैसे ही वन जाती है। उस समय किसी के हित वचन भी नही रुचते, न अपनी स्वय की बुद्धि ही औचित्य का निर्णय कर सकती है। नीति में कहा है—

असम्भवं हेम मृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्ति काले, धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति॥

अर्थात्—सोने के हिरण का होना असम्भव है, फिर भी राम को सोने के मृग का लालच हो गया। इससे प्रगट है कि बहुधा विपत्ति के समय बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलीन हो जाती है।

देवरजी, विपत्ति आने वाली थी, इसलिए जब राम की भी बुद्धि मलीन हो गई थी, तब आपकी बुद्धि मलीन हो इसमें क्या आश्चर्य है ? आप चिन्ता छोड़िये, भविष्य का विचार करिये और जो कुछ हुआ उस के लिए समझिये कि—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्।
ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि॥

अर्थात्—अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म (विपाक या प्रदेश से) अवश्य भोगने होते हैं। विना भोगे कर्म सौ करोड़ कल्प में भी क्षय नहीं होते।

भाभी ने शिशुपाल को धैर्य देने के लिए इस प्रकार समझाया और उससे कहा कि अब से आप प्रत्येक कार्य सोच समझ कर किया करियेगा, हठ में मत पड़ा करियेगा और अपने हितैषियो की बात मत ठुकराया करियेगा। भाभी के समझाने से शिशुपाल को धैर्य हुआ।

उधर कुन्डिनपुर मे रुक्म के बन्दी बनने का समाचार सुनकर रुक्म की माता को बड़ा ही दुःख और पश्चाताप हो रहा था। उसे पति और पुत्र दोनों की ही ओर से दु.ख था। वह विचारती थी कि मैंने बिना सोचे समझे पति की बात का विरोध किया उसका परिणाम यह हुआ कि पुत्री का विवाह भी न कर पाई और पुत्र भी बन्दी हुआ। यदि मैं उस समय रुक्म की बात का समर्थन न करती तो शायद रुक्म का साहस शिशुपाल को बुलाने का न होता और आज मेरे पुत्र को बन्दी न बनना पड़ता। क्या ठीक है कि मैं रुक्म को फिर जीवित देख सकूगी या नही ! मैं पुत्री के लिए कष्टदात्री बनी, पुत्र भी खोया और पति को भी मुँह दिखाने योग्य न रही। रानी शिखावती का हृदय दुःख और पश्चाताप से जल रहा था उस दुःख तथा पश्चाताप का अन्त तभी हुआ जब रुक्म लौटकर आया उसके साथ ही शिखावती ने भी महाराजा भीम से क्षमा प्रार्थना की और महाराज भीम ने दोनों को धैर्य बंधाया।

बलदेव जी ने रुक्म को बन्दी बनाकर रथ में डाल लिया। उन्होंने रुक्म की ऐंठी हुई मूछ उखाड़कर रुक्मिणी से कहा—अनुजवधू, अपने भाई की दया करके इस पर से

मक्खियां उड़ाती रहना । वलदेवजी के ताने से रुक्म को वहुत लज्जा हुई परन्तु वह विवश पड़ा था ।

कृष्ण का रथ द्वारका की ओर चला। वन्दी वना हुआ रुक्म रथ में पड़ा-पड़ा मन-मन-ही पश्चाताप कर रहा था। लज्जा के मारे वह रुक्मिणी की ओर देख भी नही पाता था।

भाई को वन्दी वना हुआ देखकर रुक्मिणी को वडा ही दुःख हुआ । उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे । वह भाई के दुर्व्यवहार को भूलकर यह विचारने लगी कि मेरे ही कारण भाई को वन्दी होना पड़ा है । अव मैं किस प्रकार भाई को वन्धनमुक्त कराऊँ ! रुक्म को छुडाने के लिए उसे दूसरा कोई मार्ग न दिख पड़ा । वह साहस करके रथ से कूद पड़ी और दौड़कर रथ के सन्मुख आ खड़ी हुई । रुक्मिणी के रथ से कूदते ही रथ रुक गया । रथ के सामने खड़ी हुई रुक्मिणी हाथ जोड़कर आंखों से आंसू वहाने लगी । कृष्ण और वलदेवजी रुक्मिणी का अभिप्राय समझ गये फिर भी श्रीकृष्ण ने उससे पूछा कि—तुम रथ से क्यों कूद पड़ी और इस प्रकार क्यों खड़ी हो ? रुक्मिणी कहने लगी – महाराज घोर-से-घोर शत्रु को भी क्षमा प्रदान करना क्षत्रियों का वहुत छोटा-सा कर्तव्य है । आप भी इस कर्तव्य का पालन तो करेंगे ही क्योंकि आप महापुरुष हैं परन्तु इस समय भाई को वन्दी देखकर मेरा हृदय वहुत दुखी हो रहा है । यह मेरा वडा भाई है । इसलिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे इस भाई को वन्धन

मुक्त कर दीजिये ।

कृष्ण—तुम्हारे जिस भाई के कारण तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़े, तुम्हारे जिस भाई ने हम पर घातक आक्रमण किया उसे वन्धन मुक्त कैसे किया जा सकता है !

रुक्मिणी—यह तो ठीक है, परन्तु जव घोर-से-घोर शत्रु के महान-से-महान अपराध भी क्षमा किये जा सकते है तब क्या मैं अपने भाई के अपराध को नही भुला सकती ? और क्या आप अपने पत्नि-भ्राता को क्षना नही कर सकते ?

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ।।

अर्थात्—जो अपने उपकारियों के लिए भला है उसकी भलाई में क्या विशेषता है ! महात्मा लोग तो उसे ही भला कहते हैं, जो अपने अपकारियों पर भी कृपा करे ।

रुक्मिणी की इस बात ने कृष्ण के हृदय को द्रवित कर दिया परन्तु उन्हे यह विचार हुआ कि रुक्म को भ्राता ने बदी वनाया यदि मैं रुक्म को वन्धन मुक्त कर दू तो संभव है कि भ्राता के मन में कोई दूसरा विचार हो जावे । इस विचार के कारण उन्होंने उत्तर में रुक्मिणी से कहा कि—यद्यपि तुम्हारा कथन ठीक है परन्तु रुक्म का अपराध अक्षम्य है, इसलिए उसे क्षमा नही किया जा सकता ।

रुक्मिणी—परन्तु आपने मुझ से कहा था कि मैं तुम्हारा हृदय दुखित नही करना चाहता; क्या यह बात पूरी न होगी ?

श्रीकृष्ण—नि सन्देह मैंने ऐसा कहा था परन्तु मैं तुम्हारे

हृदय को दु.खित भी नही कर रहा हूँ ।

रुक्मिणी अपने भाई को बन्दी देखकर किस बहन का कठोर-हृदय दु.खित न होगा ?

श्रीकृष्ण—यह ठीक है परन्तु रुक्म को मैंने बन्दी नही बनाया है । जिसने बन्दी बनाया है वही उसे बन्धनमुक्त भी कर सकता है ।

कृष्ण के उत्तर से रुक्मिणी उनका आशय समझ गई। वह आशापूर्ण नेत्रो से बलदेवजी की ओर देखकर आँसू बहाने लगी । रुक्मिणी की करुण दशा ने बलदेवजी के हृदय को आर्द्र कर दिया। वे कृष्ण जी से कहने लगे—भैया, रुक्म को उसके अपराधों का पर्याप्त दण्ड मिल चुका है । अब रुक्मिणी के हृदय को दु:ख न होने देना चाहिए और रुक्म को बधन-मुक्त कर देना चाहिए । 'आपकी जो आज्ञा' कहकर श्रीकृष्ण ने रुक्म के बन्धन खोल दिये और उसे उठाकर छाती से लगाते हुए कहा कि—तुम वीर हो। मैं तुम्हारी वीरता पर और तुम जैसा वीर साला पाकर बहुत प्रसन्न हुआ । अब हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध हुआ है अत: अब तक की सब बातें भूल कर प्रेम व्यवहार रखने मे ही आनन्द है ।

बलदेवजी ने भी रुक्म को छाती से लगाकर उसकी प्रशंसा की । वे भी कहने लगे कि—तुम जैसे वीर की बहिन मेरी अनुजवधू बनी यह बड़े ही आनन्द की बात है । अब तुम जाओ और अपने पिता की सेवा करके उन्हें सुख पहुं-चाओ ।

अपने भाई को वन्धनमुक्त देखकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। रुक्म भी श्रीकृष्ण और बलदेवजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके कहने लगा कि—मुझे पिता की आज्ञा न मानने, आपसे निष्कारण वैर रखने और बहिन रुक्मिणी के साथ अन्याय करने का जो प्रतिफल मिला है वह उचित ही है। यदि मुझे यह दण्ड न मिलता तो मेरा क्रोध तथा अभिमान नष्ट न होता। अब आप कृपा करके कुन्डिनपुर पधारिये। मै विधिवत् आपके साथ अपनी वहिन का विवाह करके फिर आपको विदा करूँगा।

रुक्म की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण बलदेव प्रसन्न हुए। रुक्म की प्रार्थना के उत्तर मे श्रीकृष्ण उससे कहने लगे कि—हमे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करने मे दूसरी कोई आपत्ति नही है परन्तु तुम्हारी बहिन के साथ मेरा विवाह हो चुका। पाणिग्रहण ही विवाह है और मैं रुक्मिणी का पाणिग्रहण कर चुका हूँ। अब तो केवल पारस्परिक प्रतिज्ञा करनी शेष है जो कही भी की जा सकती है। इसके सिवा मैं वैवाहिक-आडम्बर का विरोधी हूँ। मैं नही चाहता कि विवाह मे बाह्याडम्बर तो किया जावे और विवाह सम्बन्धी जिन बातों पर लक्ष्य देने की आवश्यकता है उनकी अवहेलना की जावे। मैं यदि कुन्डिनपुर लौटकर गया और तुमने धूमधाम से विवाह किया तो यह दूसरो लोगो के सामने विवाह में धूमधाम करने का आदर्श रखना होगा। ऐसा करने से गरीबों के हृदय मे—आडम्बर न कर सकने के कारण दु.ख होगा और इस प्रकार

लोगों में विषमता फैलेगी। साथ ही दहेज की घातक प्रथा को प्रोत्साहन मिलेगा। लोग मेरा उदाहरण देकर कहेंगे कि धूम से विवाह कराने तथा दहेज पाने के प्रलोभन से श्रीकृष्ण भी तो लौट आये थे! इसलिए इस समय मेरा कुन्डिनपुर चलना ठीक नहीं है मैं आपके व्यवहार से बहुत सन्तुष्ट हूँ। आप जाइये इस सम्बन्ध के होने से एक बार नहीं किन्तु अनेक बार कुन्डिनपुर आना होगा।

रुक्म—यद्यपि आपका कथन ठीक है, परन्तु आप द्वारका पहुंचकर वहाँ रुक्मिणी के साथ विवाह सम्बन्धी प्रतिज्ञाएँ करें करावेंगे, तो इसमें तो मेरा भयंकर अपमान होगा! मुझ पर यदि आपकी कृपा है तो आप मुझे इस अपमान से बचाइये।

श्रीकृष्ण—दूसरे का अपमान करके अपना सम्मान बढ़ाने की मैं कदापि इच्छा नहीं रखता। आप विश्वास रखिये।

कृष्ण के उत्तर से रुक्म को सन्तोष हुआ। वह कुन्डिनपुर लौटकर आया और रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण बलदेव सीधे गिरनार पर्वत पर गये। वहाँ बलभद्रजी, जल, अग्नि वनस्पति आदि की साक्षी से रुक्मिणी और कृष्ण से विवाह संबंधी प्रतिज्ञाएँ कराने लगे। बलदेवजी ने रुक्मिणी से कहा—राजकुमारी तुम श्रीकृष्ण की पत्नी बनने को तैयार हो लेकिन इनसे किन-किन बातों का विश्वास चाहती हो वह स्पष्ट कहो और श्रीकृष्ण से प्रतिज्ञा करा लो। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को भी उचित है कि वे तुमसे जो कुछ चाहते हों वह स्पष्ट कह कर तुमसे प्रतिज्ञा करालें।

वलदेवजी की वात सुनकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण से कहने लगी—हे कान्त, यदि आप मेरे साथ ज्ञान, दर्शन, तप, सत्य और दान करो, भक्तिपूर्वक मुनियो और गुरुजनो की अन्नादि द्वारा पूजा करो, उनका सत्कार करो, उसमे मुझे साथ रखो तो मै आपकी धर्मपत्नी बनती हूँ। हे कान्त, यदि आप कुटुम्ब की रक्षा तथा पशुओ का पालन करो, आय, व्यय एव धन धान्य के सम्बन्ध मे मेरी सम्मति लो तो मै आपकी धर्मपत्नी बनती हूँ । हे कान्त यदि आप कुए, बावडी, तालाब बनवाने, बाग लगवाने और गौशाला चलाने आदि शुभ कार्यों में मेरी अनुमति लो तो मैं आपकी वामाङ्गिनी वनती हूँ । हे कान्त, यदि आप किसी भी पर स्त्री का चाहे वह रम्भा के समान ही सुन्दरी क्यो न हो कभी भी सेवन न करे तो मै आपकी अर्द्धाङ्गिनी बनती हूँ ।

रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के सामने ये सब बाते विस्तृत रूप मे कही । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की मागों को सुनकर उससे कहा—हे कान्ता, यदि तुम अपने मन को मेरे मन के अनुगत रखो, सदा मेरी आज्ञा का पालन करो तथा पतिव्रता एव धर्मपरायणा होकर रहो तो मुझे तुम्हारी ये सब वाते स्वीकार है ।

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, वनस्पति, धर्म आदि और वलदेवजी को साक्षी करके रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कान्त, मै आपकी कही हुई सव बातो का मन, वचन और काय से पालन करूँगी । रुक्मिणी के इस प्रकार प्रतिज्ञा

करने पर श्रीकृष्ण ने भी सूर्य, चन्द्र आदि सब को और बल-देवजी को साक्षी करके कहा—हे कान्ता, मै भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मन, वचन, काय से मै उन सब बातों का पालन करूंगा जो तुमने मुझ से कहीं हैं और जिनका पालन करने के विषय में मुझ से विश्वास चाहा है।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी की परस्पर इस प्रकार प्रतिज्ञा की जाने पर बलदेवजी ने दोनों से कहा कि—तुम दोनों आदर्श पति-पत्नी के रूप में अपना गृहस्थ जीवन बिताओ और अन्त में आत्मकल्याण के लिए गृहस्थाश्रम को त्यागकर आत्मा का उद्धार करो, यही मेरा आशीर्वाद है।

रुक्मिणी, कृष्ण और बलदेवजी द्वारका आये। द्वारका से कृष्ण और बलदेव अकेले हो गये थे इस कारण द्वारका-वासी लोगों को बडी चिन्ता हो रही थी। रुक्मिणी सहित दोनों भाई के पहुंचने से द्वारका के लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। रुक्मिणी की रक्षा करने के कारण सब लोग श्रीकृष्ण की सराहना करने लगे और धन्यवाद देने लगे।

सासू ससुर, आदि से मिलकर रुक्मिणी भी बहुत प्रसन्न हुई। वह अपने भाग्य की सराहना करने लगी। देवकी आदि भी रुक्मिणी का सौन्दर्य और सद्व्यवहार देख कर बहुत प्रसन्न हुई। रुक्मिणी के नम्र व्यवहार ने उनके हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसने प्रेम-व्यवहार द्वारा अपनी सौतो को भी प्रसन्न कर दिया और इस प्रकार श्रीकृष्ण की पटरानी होकर आनन्द से रहने लगी।

रुक्मिणी का कन्या-जीवन जैसा दृढ़ता और सत्यनिष्ठा पूर्ण था, उसका गृहिणी-जीवन भी वैसा ही रहा। कृष्ण के सत्यभामा आदि अनेक रानियाँ थी, फिर भी नम्रता और पतिभक्ति के कारण रुक्मिणी-कृष्ण की हृदयवल्लभा बन गई तथा कृष्ण की समस्त रानियो मे वह सबसे प्रमुख मानी जाने लगी। अन्तकृत दशाग सूत्र में भी श्रीकृष्ण की रानियो की गणना बताते हुए कहा है—

रुक्मिणी पामोक्खाणं सोलस्सण्हं देवी साहस्सीणं।

अर्थात्—(कृष्ण के) रुक्मिणी आदि सोलह सहस्र रानियां थीं।

इस प्रकार शास्त्र मे भी रुक्मिणी के पीछे दूसरी रानियो को बताया गया है और रुक्मिणी का नाम सर्वप्रथम कहा गया है। यह उसके आदर्श गृहिणी-जीवन का ही परिणाम था। वह तीन खण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण की प्रिय रानी थी, फिर भी उसमे विनय, नम्रता और सरलता अधिक थी। वह सासू, ससुर और पति आदि गुरुजनो की सेवा करती, अपनी सौतो से प्रेम करती और अपने से छोटो पर कृपा रखती। सबको वश मे करने, सबके हृदय की स्वामिनी बनने का वह इसे उत्तम उपाय समझती थी। आधुनिक समय की अधिकाँश स्त्रियाँ अपने पति आदि को वश में करने के लिए दूसरे-दूसरे घृणित उपायों का अवलम्बन लेती हैं, लेकिन रुक्मिणी सवको वश करने का महर्षियों द्वारा बताया गया एक यही उपाय जानती थी, कि—

जंपई पियवयणं किज्जइ विन्नो दोज्जई दानं।

सव्व गुण गहण करण मूल मन्तं वसीकरण ।।

अर्थात्—प्रिय वचन कहना, विनय करना, दान देना और गुणों को ग्रहण करना ये सब दूसरे को वश मे करने के प्रधान उपाय है।

रुक्मिणी ने इन्ही उपायो को अपनाया था, जिससे उसका गृहिणी-जीवन भी आनन्दपूर्वक व्यतीत हुआ और उसके द्वारा दूसरो को आनन्द प्राप्त हुआ।

रुक्मिणी का मातृ-जीवन भी उच्च था। शास्त्र मे रुक्मिणी की सतान के सम्बन्ध मे केवल प्रद्युम्नकुमार का उल्लेख पाया जाता है, प्रद्युम्नकुमार के सिवा रुक्मिणी के कोई और सतान होने का वर्णन शास्त्र मे नही, बल्कि वह अधिक सतान की इच्छुक भी नही थी, लेकिन केवल एक ही पुत्र होने—अधिक सतान न होने से रुक्मिणी के मातृ-जीवन मे किसी प्रकार की न्यूनता नही मानी जा सकती। सिहनी अधिक बच्चो की माता नही होती, परन्तु वह सिह को ही जन्म देती है। इसी में इसकी शोभा भी है। नीतिकारो का कथन है कि—

वरमेकः गुणी पुत्रो निर्गुणैश्च शतैरपि ।
एकश्चन्द्र तमोहन्ति न च तारा सहस्रशः ।।

अर्थात्—सौ मूर्ख पुत्रों के होने की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र का होना अच्छा है। क्योंकि एक ही चन्द्र सारे अन्धकार को नष्ट कर देता है, लेकिन हजारों तारे अन्धकार नहीं मिटा सकते।

इसके अनुसार एक ही पुत्र की माता होने पर भी रुक्मिणी का मातृ-जीवन आदर्श माना गया है। क्योकि वह

एक पुत्र प्रद्युम्न भी समस्त यादवकुमार में अग्रणी था। शास्त्र मे भी कृष्ण की साहबी का वर्णन करते हुए कहा है कि—

पज्जुण पामोक्खाणं अद्धट्ठाणं कुमार कोडीणं।

अर्थात्—प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड यादवकुमार थे।

प्रद्युम्न ऐसे वीर की माता, कृष्ण ऐसे महापुरुष की प्रिय-पत्नी और तीन खड की महारानी होती हुई भी रुक्मिणी भोग-विलास मे ही लिप्त नही रही। श्री गजकुमार मुनि की हत्या की घटना पर से श्रीकृष्ण के हृदय मे अनेक विचार उथल-पुथल मचा रहे थे। उन्ही दिनो मे बाईसवे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि अनेक जीवो का कल्याण करते हुए द्वारका सहस्राम्र बाग मे पधारे। श्रीकृष्ण भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने के लिये गये। भगवान को वन्दन करके उनने भगवान से द्वारका के निवासियो का भविष्य पूछा। भगवान से अनिष्ट भविष्य सुनकर श्रीकृष्ण ने सारे नगर मे वह सयम घोपणा करा दी जो भी व्यक्ति सयम लेना चाहता हो, वह लेकर आत्म-कल्याण कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के कुटु-म्बियो के भरण-पोपण का भार मै अपने ऊपर लेता हूँ और जिसको मेरी आज्ञा की आवश्यकता है, उनको आज्ञा भी देता हूँ। श्रीकृष्ण की यह घोपणा सुनकर रुक्मिणी को भी ससार से विरक्ति हो गई। वह भगवान अरिष्टनेमि की सेवा मे गई और भगवान की वाणी सुनकर प्रार्थना की कि—हे प्रभो, यद्यपि पति की घोपणा के अनुसार अब मुझे सयम लेने के विपय मे पति से आज्ञा लेने की जरूरत नही

है, फिर भी पतिव्रता धर्म की रक्षा के लिये मैं पति से आज्ञा लेकर संयम स्वीकार करूँगी। भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करके रुक्मिणी घर आई और श्रीकृष्ण की आज्ञा प्राप्त कर के पुनः भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हो उसने संयम स्वीकार किया।

रुक्मिणी ने जिस प्रकार कन्या, पत्नी और मातृ-जीवन के कर्तव्यों को सुचारु रूप से पालन किया था, उसी प्रकार संयम का भी सुचारु रूप से पालन किया। अंत में तप द्वारा इस विनाशी शरीर को त्याग, सिद्धपद प्राप्त कर संसार के जन्म-मरण से मुक्त हो गई।